ग्रन्थमाला सम्पादक और नियामक
श्री लक्ष्मीचन्द्र जैन एम ए

प्रकाशक
श्री अयोध्याप्रसाद गोयलीय
मंत्री भारतीय ज्ञानपीठ
दुर्गाकुण्ड रोड बनारस

ज्येष्ठ वीरनिर्वाण सम्वत् २४७३

द्वितीय संस्करण — मई १९४७ — मूल्य
एक हजार — तीन रुपये बारह आने

मुद्रक
जे के शर्मा
इलाहाबाद लॉ जर्नल प्रेस
इलाहाबाद

प्राप्तिस्थान :
जिनवाणी कार्यालय, रामपुर

रामपुर दि० जैन परिषद्-पंडालके काव्यमय वाता-
वरणमें काव्यमय भावनाओं एवं असीम अनुरागसे
ओतप्रोत 'इन्होंने' अपने सुन्दर कवियोंकी
चर्चित कल्पनाओंके संग्रह और सम्पादनके
उत्तरदायित्वका भार मुझे ही सौंपा।
फलतः अपने प्रयत्नोंकी पुस्तक-
पिटारीको 'उनकी' सेवामें प्रस्तुत
करते हुए संकोच इसलिए नहीं
है कि इसमें सब 'उनका' ही
है—इनके ही हैं सुन्दर
कवि, इनकी ही
हैं प्रिय कवि-
ताएँ और है
'इनकी' ही
अपनी

—रमा

प्रकाशकीय

स्वर्गीय आचार्य प० महावीरप्रसादजी द्विवेदीने एक बार लिखा था—"जैन धर्मावलम्बियोंमें सैकड़ों साधु-महात्माओं और हजारों विद्वानों ने ग्रन्थ रचना की है। ये ग्रन्थ सिर्फ जैनधर्मसे ही सम्बन्ध नहीं रखते, इनमें—तत्त्व-चिन्तन, काव्य, नाटक, छन्द, अलंकार, कथा-कहानी, इतिहाससे सम्बन्ध रखनेवाले ग्रन्थ हैं जिनके उद्धारसे जैनेतरजनोंकी भी ज्ञान-वृद्धि और मनोरंजन हो सकता है। भारतवर्षमें जैनधर्म ही एक ऐसा धर्म है, जिसके अनुयायी साधुओं और आचार्योंमेंसे अनेक जनोंने धर्म उपदेशके साथ ही साथ अपना समस्त जीवन ग्रन्थ-रचना और ग्रन्थ-संग्रहमें खर्च कर दिया है। इनमें कितने ही विद्वान बरसातके चार महीने बहुधा केवल ग्रन्थ लिखनेमें ही बिताते रहे हैं। यह उनकी इस प्रवृत्तिका ही फल है जो बीकानेर, जैसलमेर, नागौर, पाटन, दक्षिण आदि स्थानोंमें हस्तलिखित पुस्तकोंके गाडियों बस्ते आज भी सुरक्षित पाये जाते हैं।"

ऐसे ही अनुपलब्ध अप्रकाशित ग्रन्थोंके अनुसन्धान, सम्पादन और प्रकाशनके लिए सन् १९४४ में भारतीय ज्ञानपीठकी स्थापना की गई थी। जैनाचार्यों और जैनविद्वानों द्वारा प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश साहित्यका भंडार अनेक लोकोपयोगी रचनाओंसे ओतप्रोत है। हिन्दी-गुजराती, कन्नड आदिमें भी महत्त्वपूर्ण साहित्य निर्माण हुआ है। किन्तु जनसाधारणके आगे वह नहीं आ सका है, यही कारण है कि अनेक ऐतिहासिक, साहित्यिक और आलोचक साधनाभावके कारण जैनधर्मके सम्बन्धमें लिखते हुए उपेक्षा रखते हैं। और उल्लेख करते भी हैं, तो ऐसी मोटी और भद्दी भूल करते हैं कि जनसाधारणमें बड़ी भ्रामक धारणाएँ फैलती रहती हैं।

किसी भी देश और जातिकी वास्तविक स्थितिका दिग्दर्शन उसके साहित्यसे हो सकता है। जैनोंका प्राचीन साहित्य प्रकाशमें नहीं आया और नवीन समयोपयोगी निर्माण नहीं हो रहा है। जिस तीव्र गतिसे वर्तमान भारतमें प्राचीन और अर्वाचीन-साहित्यका निर्माण हो रहा है, उसमें जैनोंका सहयोग बहुत कम है। जैन पूर्वजोंने अपनी अमूल्य रचनाओंसे भारतीय ज्ञानका भण्डार भरा है उनके ऋणसे उऋण होनेका केवल एक ही उपाय है कि हम उनकी कृतियोंको प्रकाशमें लाय और लोकोपयोगी नवीन साहित्यका निर्माण करें। ताकि साहित्यिक-संसारकी उन्नतिमें हम बरपर हाथ बटा सकें।

प्राचीन संस्कृत प्राकृत पाली जैन और बौद्धधर्म एवं दर्शन की ग्रन्थमालाएँ प्रेसमें हैं—जो शीघ्र ही प्रकाशित हो रहे हैं। और अन्य भारतीय उत्तमोत्तम-ग्रन्थोंका सम्पादन हो रहा है। प्रस्तुत पुस्तक ज्ञान पीठकी जैन-ग्रन्थ-मालाका प्रथम पुष्प है। और ज्ञानपीठकी अध्यक्षा श्रीमती रमारानीजीने बड़े परिश्रमसे इसका सम्पादन किया है।

यद्यपि हिन्दी कविता आज जितनी विकसित और उन्नत है उसके आगे प्रस्तुत पुस्तककी कविताएँ कुछ विशेष महत्व नहीं पायेंगी फिर भी यह एक प्रयत्न है। इससे जैनसमाजकी वर्तमान कवि-विधिका परिचय मिलेगा और भविष्यमें उत्तमोत्तम साहित्य-निर्माण करनेका लेखकों और प्रकाशकोंको उत्साह भी। प्रस्तुत पुस्तकके कवियोंमें पुरातत्त्व विचक्षण प० जुगलकिशोरजी मुख्तार, प० नाथूरामजी प्रेमी और सत्य भक्त प० दरबारीलालजी आदि कुछ ऐसे गौरव योग्य कवि हैं, जो कभीके इस क्षेत्रसे हटकर पुरातन इतिहासकी खोज-शोधमें लगे हुए हैं अथवा लोकोपयोगी साहित्य-निर्माण कर रहे हैं। काश वे इस क्षेत्रमें ही सीमित रहे होते तो आज अवश्य जैनों द्वारा प्रस्तुत किया हुआ कविता-साहित्य भी गौरवशाली होता। मुख्तार साहबकी लिखी 'मेरी भावना' ही एक ऐसी अमर रचना है जिसे आज लाखों नर-नारी पढ़कर आत्म-सन्तोष

करते हैं। नवीन कवियोमे 'श्री हुकमचन्दजी बुखारिया' ऐसे उदीयमान कवि हैं, जिनसे हिन्दी साहित्यको एक न एक रोज़ कीमती रचनाएँ प्राप्त होगी।

ज्ञानपीठकी स्थापनाके ३-४ महीने बाद ही लखनऊमें जैनपरिषद्का अधिवेशन था, उसके सभापति श्रीमान् साहू शान्तिप्रसादजीकी अभिलाषा थी कि 'आधुनिक जैन कवि' उस समय तक अवश्य प्रकाशित कर दिया जाय। इस अल्प समयमें प्रस्तुत पुस्तकका सम्पादन और प्रकाशन हुआ, और पहिला सस्करण एक सप्ताहमें समाप्त हो गया, मांग बढ़ती रही, उलाहने आते रहे, और सब कुछ साधन होते हुए भी दूसरा सस्करण शीघ्र प्रकाशित नही हो सका। सशोधित प्रेस कापी तैयार पडी रही। परन्तु प्रयत्न करनेपर भी इससे पहले प्रकाशित नही हो सकी! कही-कही कवि-परिचय भी भूल से छूट गया है जिस का हमें खेद है।

सम्पादिका श्रीमती रमारानीजीका यह पहला प्रयास है, यदि वे इस ओर अग्रसर रही, तो उनसे हमको भविष्यमें काफी आशाएँ हैं।

डालमियानगर
१८ अक्तूबर १९४६

अयोध्याप्रसाद गोयलीय
—मन्त्री

प्रवेश

कवियोका साम्प्रदायिक आधारपर वर्गीकरण करना शायद जाति-विशेषके लिए गौरवकी बात हो, कविके लिए नही। जो कवि है, चाहे जहाँका भी हो, उसकी तो जाति और समाज एक ही है 'मानव-समाज'। कविकी मुस्कानमें मानवताका वसन्त खिलता है और उसके आँसुओमें विश्वका पतझड झरझराता है। यह सारा मानव-समाज हृदयके नाते एक ही है। अपनी माताके लिए जो श्रद्धा, पुत्रके लिए जो ममता, बिछुड़ी हुई प्रेयसीके लिए जो विकलता और अपमानके लिए जो क्षोभ एक भारतीय किसानके हृदयमें उमडता है, वही लन्दनके सम्राट्के हृदयमे और वही उत्तरी ध्रुवके अन्तिम छोरपर बसनेवाले 'एस्कीमो'के हृदयमें भी। इस श्रद्धा, ममता, विकलता और क्षोभ आदिकी अनुभूतियोको कवि शब्दोंसे, चित्रकार तूलिकासे, गायक स्वरोंसे, शिल्पी छैनीसे और कलावित् अपने अङ्ग-प्रत्यङ्गकी क्रिया-प्रक्रिया द्वारा साकार रूप देता है।

इस प्रकार साहित्य, सङ्गीत और कलाके उद्गम तथा उद्देश्यकी एकताके बीचमें मैं जो कवियोंको आधुनिकताकी सीमामें घेरकर 'जैनत्व'के वर्गमें विभक्त कर रही हूँ उसका उद्देश्य क्या है? केवल यही कि इस पुस्तकको लिखते समय सारे साहित्यकी जिम्मेदारी अपने सिरपर लादनेसे बच जाऊँ और अपने परिश्रमका क्षेत्र छोटा कर लूँ। दूसरे, जब कवि मानव-समाजका प्रतिनिधि है, तो उसे ढूँढकर मानव-समाजके सामने लानेका काम भी तो किसीको करना ही चाहिए। मैं अपनी जाति और समाजके सम्पर्कके द्वारा जिन कवियोंको जान सकी हूँ और जिन तक पहुँचना दुर्लभ है, मानवताके उन प्रतिनिधियोको विशाल साहित्य-संसारके सामने ला रही हूँ। वे अपनी बात अब स्वयं ही आपसे कह देंगे।

इस पुस्तकके लिए सामग्री एकत्रित करनेमें यद्यपि कई महीने लग गये फिर भी अनेक ऐसे कवि रह गये हैं जिनके साथ पत्र द्वारा सम्पर्क स्थापित नहीं हो सका अथवा उचित सामग्री प्राप्त नहीं हुई। संकलनका काम अपनी 'रुचि'के आधारपर किया गया है इसलिए उससे सब किसीको सन्तोष होगा ऐसी कल्पना करनेके लिए कोई गुंजाइश नहीं है। हिन्दीके आधुनिक जैन-कवियोंकी कविताओंका एक भी ऐसा संग्रह और संकलन मुझे नहीं प्राप्त हो सका जिससे वर्गीकरणके लिए कुछ दिशा-निर्देश मिलता। शायद ऐसी पुस्तक कोई प्रकाशित ही नहीं हुई।

मैंने इस पुस्तकको मुख्यतः निम्न शीर्षकोंमें विभक्त किया है—

१ युग-प्रवर्तक
२ युगानुगामी
३ प्रगति-प्रेरक
४ प्रगति-प्रवाह
५ ऊर्मियाँ
६ गीति-हिलोर और
७ सीकर।

पहले तीन शीर्षक कविप्रधान हैं और शेष चारमें काव्य-धारा प्रधान है। फिर भी कवियोंकी प्रधानता विषयोंका संकलन सामग्रीकी उपलब्धि अनुपलब्धि और वर्तमान परिस्थितिमें पुस्तकके कलेवरको कम करनेकी आवश्यकता इत्यादि सब बातोंका ख्याल रखनेके कारण बीच-बीचमें पुस्तककी योजनामें छोटे-मोटे परिवर्तन करने पड़े हैं।

'युग-प्रवर्तक' कवियोंके सम्बन्धमें इतना ही कहना है कि नये जागरण और सुधारके युगमें जिस विचार-क्रांतिको इन महान् आत्माओंने समाजकी मनभूमिकी ओर उन्मुख किया उसने समाज-मनको नया जीवन और उसके साहित्यको नया स्वर दिया। वे वर्तमान युगके महारथी हैं और

मुझे कहनेकी छूट दी जाय तो मैं तो इन्हें 'प्रकाश-स्तम्भ' कहनेमें भी न सकुचाऊँगी।

'युगानुगामी' कवियोंमें हमारी समाजके अनेक मान्य विद्वान्, सम्पादक और विचारक हैं, जो हमारी प्राचीन संस्कृतिके संरक्षणमें लगे हुए हैं, और वे निस्सन्देह युगारम्भकी नई प्रेरणाको साहित्य और समाज-सुधारके क्षेत्रमें परीक्षणके द्वारा आगे ले जानेवाले हैं। इस समुदायके कवियोंकी कविताओंमें यह वैशिष्ट्य है कि वे प्रधानतः धर्ममूलक, दार्शनिक या सुधारवादी हैं।

कविताकी दृष्टिसे तीसरा परिच्छेद, 'प्रगति-प्रवर्तक', विशेष महत्त्वका है। इसमें समाजके वह चुने हुए नवयुवक कवि हैं जो 'युग-प्रवर्तक'से आगे बढ़ गये हैं और जिन्होंने हिन्दी कविताकी प्रचलित शैलियोंको अपनाकर कविताको भाव, भाषा और विषयकी दृष्टिसे प्रगतिकी श्रेणीमें ला दिया है। इनमेंसे अनेक कवियोंको हमारे साहित्यमें प्रगतिके महारथियोंके रूपमें स्मरण किया जायेगा, ऐसा मेरा विश्वास है।

अब जो प्रगतिकी धारा बह रही है, उस प्रवाहमें नये-नये कवि अपनी-अपनी प्रतिभा, रुचि और क्षमताके अनुसार अवगाहन कर रहे हैं। इस 'प्रगति-प्रवाह'में हमारे समाजकी सुकुमारमना कवयित्रियोंकी सरस भाव-ऊर्मियाँ तरंगित हो रही हैं, तरुण कवियोंकी 'गीति-हिलोर' नृत्य कर रही है, और अनेक छोटे-बड़े कवियोंके प्रयत्न-सीकर उल्लाससे उछल रहे हैं।

हमारे इन कवि-कवयित्रियोंका आजके प्रगतिशील हिन्दी साहित्यमें क्या स्थान है, यह प्रश्न करने और उसका उत्तर खोजनेका समय अभी नहीं आया। यदि यह पुस्तक हमारे साहित्यिकोंकी विचारधाराको इस प्रश्नकी ओर उन्मुख कर सकी, और यदि हमारे कवियोंमें इस प्रश्नके समाधान करनेकी इच्छा जाग्रत हो सकी, तो मैं अपने इस प्रयत्नकी सफलतापर उचित गर्व अनुभव करूँगी।

मैं चाहती थी इस पुस्तकको अपने कवि-कलाकारोंके चित्रोंसे सजाती और हर प्रकारसे इसे सुन्दरतम बनाती पर मुझे बहुतसे कवियोंके चित्र प्राप्त न हो सके और जिनके चित्र आये भी उनमेंसे अधिकांश ऐसे थे जिनके सुन्दरतर ब्लॉक नहीं बन सकते थे। भविष्यमें सम्भव हुआ तो इन कमियोंको दूर करनेका अवश्य प्रयत्न करूँगी।

मुझे खेद है कि मैं अनेक कृपालु कवि-कवयित्रियोंकी रचनाएँ जो इस संग्रहके लिए प्राप्त हुई थीं सम्मिलित नहीं कर पाई। मैं उनसे क्षमाप्रार्थी हूँ। मेरा विश्वास है कि अगले संस्करण तक उनकी नई रचनाएँ और भी अधिक सुन्दर होंगी और तब तक मुझमें भी सम्पादनकी क्षमता आ सकेगी।

इस पुस्तकमें जिन साहित्यिकोंकी रचनाएँ जा रही हैं उनकी कृपा और सहयोगके लिए मैं हृदयसे आभारी हूँ। भाई कल्याणकुमार 'शशि'ने कई कवियोंके पास स्वयं पत्र लिखकर उनसे कविताएँ मिलवाईं इसके लिए मैं आभारी हूँ। पण्डित अयोध्याप्रसादजी गोयलीयने उचित सुझाव दिये हैं और 'इलाहाबाद लॉ जर्नल प्रेस'के सुयोग्य व्यवस्थापक श्री कृष्णप्रसाद दरने इसके मुद्रणमें हर तरहसे सहयोग दिया है अतः ये दोनों धन्यवादके पात्र हैं।

अब रह गये श्री लक्ष्मीचन्द्र जैन। इनके विषयमें जो कहना चाहती हूँ उसके उपयुक्त शब्द नहीं सूझ रहे हैं। वह साहित्यिक और कवि हैं अपनी भावुक कल्पनासे समझ लेंगे कि मैंने क्या कहा और क्या नहीं कहा। बस।

डालमियानगर
जून १९४४

रमा जैन

निर्देश

युग-प्रवर्तक

युगानुगामी

पृष्ठ

पृष्ठ

पृष्ठ

ऊर्मियाँ

पृष्ठ

गीति-हिलोर

सीकर

युग-प्रवर्तक

पंडित जुगलकिशोर मुख़्तार, 'युगवीर'

श्री पंडित जुगलकिशोरजी मुख़्तारने गत वर्ष जब अपने महान् आदर्श-मूलक जीवनके छयासठवें हेमन्तमें प्रवेश किया तो सम्पूर्ण जैन समाज और साहित्यिक जगत्ने एक सम्मान-समारोहका आयोजन करके उनकी सेवाओंके आगे हार्दिक श्रद्धाञ्जलि अर्पण की। इस साहित्य-तपस्वीके ६६ वर्षकी जीवन-साधनाने समाजकी वर्त्तमान पीढ़ी और भारतवर्षकी आगे आनेवाली सन्ततियोंके पथ-प्रदर्शनके लिए ऐसे प्रकाश-स्तम्भका प्रतिष्ठापन कर दिया है जो अक्षय और अटल होकर रहेगा या रहना चाहिए।

आपकी साहित्यिक सेवाओ, शोध और खोजकी अनवरत कार्य-धाराओं तथा पुरातत्त्व और इतिहासके विशाल ज्ञानको देश-विदेशके विद्वानोंने प्रामाणिकताकी कसौटीपर कसकर उसे खरा सोना बताया है। किन्तु ये विद्वानों और मनीषियोंकी दुनियाँकी बातें हैं। समाज या जन-समूहके जीवनसे उनका क्या संबध है, यह समझनेके लिए जनताको अपने ज्ञानका धरातल ऊँचा उठाना होगा। सौभाग्यसे पंडित जुगलकिशोरजीके जीवन-कार्यकी यह केवल एक दिशा है।

समाजके सार्वजनिक जीवनकी दृष्टिसे जिस बातका सबसे अधिक महत्त्व है वह तो यही है कि पंडित जुगलकिशोरजी एक प्रमुख युग-प्रवर्त्तक हैं—धार्मिक क्षेत्रमें, सामाजिक क्षेत्रमें और साहित्यिक क्षेत्रमें। उन्होंने धार्मिक श्रद्धाको पाखंड-पिशाचके पंजेसे छुड़ाया है, समाजके सर्वाङ्गमें फैले हुए और प्राणों तक परिव्याप्त रूढ़ि-विषको निर्भीक आलोचनाके नश्तरसे निष्क्रिय कर देनेकी सफल चेष्टा की है, और साहित्य-फुलवाड़ीमें—जिसकी कि जमीन तक फटने लगी थी और जहाँके लोग सुगन्ध-दुर्गन्धकी पहचान ही भूले जा रहे थे—भावोंके सुरभित सुमन खिलाये हैं।

आपके कवि-जीवनकी एक झाँकी सम्मान-समिति द्वारा प्रकाशित पत्रिकाने इस प्रकार कराई है —

"अपने जीवनके प्रारंभमें उन्होंने कविके रूपमें अपने साहित्यिक कार्यका प्रारंभ किया था और 'मेरी भावना' नामक एक छोटी-सी पुस्तिका लिखी थी। योरोपकी राजनैतिक पार्टियोंके चुनाव 'मैनिफैस्टो' (manifesto) की तरह यह उनकी जीवन-साधनाका 'मैनिफैस्टो' (घोषणापत्र) था। इसकी लाखों प्रतियाँ अभी तक छप चुकी हैं। भारतवर्षकी अंग्रेजी संस्कृत उर्दू गुजराती मराठी कनड़ी आदि अनेक भाषाओंमें इसका अनुवाद हो चुका है। अनेक प्रान्तीय म्युनिसिपल और डिस्ट्रिक्ट बोर्डकी संस्थाओंने इसे राष्ट्रीय भावनाके रूपमें स्वीकार किया है और यहाँ नित्य प्रति इसकी प्रार्थना होती है। हिन्दीमें इस पुस्तकका प्रकाशन वितरण और बिक्रीका शायद अपना ही रिकार्ड है।

अनेक संस्थाओंके सार्वजनिक उत्सवोंका प्रारंभ इसी प्रार्थनासे होता है। न जाने कितने अशान्त हृदयोंको इसने शान्ति प्रदान की है और कितनोंको सन्मार्गपर लगाया है। उनकी अन्य कविताएँ 'वीर-पुष्पाञ्जलि' के नामसे २१ वर्ष पहले प्रकाशित हुई थीं। उसके बाद भी 'महावीर-सन्देश' जैसी कितनी ही सुन्दर भावपूर्ण कविताएँ लिखी तथा प्रकट की गई हैं।"

संसारके साहित्यके लिए और मानव-जगत्के लिए 'मेरी भावना' एक जैन-कविकी इस युगकी बहुत बड़ी देन है; और 'आधुनिक जैन-कवि'का आरम्भ इसी कविता—इसी राष्ट्रीय प्रार्थना—से हुरे रहा है।

काव्य-जगत् और कार्य-जगत् दोनोंमें पं० जुगलकिशोरजी मुख्तार सच्चे 'युगवीर' सिद्ध हुए हैं।

मेरी भावना

जिसने राग-द्वेष-कामादिक जीते, सब जग जान लिया,
सब जीवोको मोक्षमार्गका निस्पृह हो उपदेश दिया,

बुद्ध, वीर, जिन, हरि, हर, ब्रह्मा
, या उसको स्वाधीन कहो,
भक्ति-भावसे प्रेरित हो यह
चित्त उसीमें लीन रहो ।१।

विषयोकी आशा नहि जिनके, साम्य-भाव-धन रखते है,
निज-परके हित-साधनमें जो निश-दिन तत्पर रहते है,

स्वार्थ - त्यागकी कठिन तपस्या
बिना खेद जो करते है,
ऐसे ज्ञानी साधु जगतके
दुख - समूहको हरते है ।२।

रहे सदा सत्सग उन्हीका, ध्यान उन्हीका नित्य रहे,
उन ही जैसी चर्यामें यह चित्त सदा अनुरक्त रहे,

नही सताऊँ किसी जीवको
झूठ कभी नहि कहा करूँ,
परधन-वनितापर न लुभाऊँ
सन्तोषामृत पिया करूँ ।३।

अहकारका भाव न रक्खूँ, नही किसीपर क्रोध करूँ,
देख दूसरोकी बढतीको कभी न ईर्षा-भाव धरूँ,

रहे भावना ऐसी मेरी
सरल सत्य व्यवहार करूँ
बने जहाँ तक इस जीवनमें
औरोंका उपकार करूँ।४।

मैत्री-भाव जगतमें मेरा सब जीवोंसे नित्य रहे
दीन-दुखी जीवोंपर मेरे उरसे करुणा स्रोत बहे

दुर्जन क्रूर कुमार्गरतोंपर
क्षोभ नहीं मुझको आवे
साम्यभाव रक्खूँ मैं उनपर
ऐसी परिणति हो जावे।५।

गुणी जनोंको देख हृदयमें मेरे प्रेम उमड़ आवे
बने जहाँ तक उनकी सेवा करके यह मन सुख पावे

होऊँ नहीं कृतघ्न कभी मैं
द्रोह न मेरे उर आवे
गुण ग्रहणका भाव रहे नित
दृष्टि न दोषोंपर जावे।६।

कोई बुरा कहे या अच्छा लक्ष्मी आवे या जावे
लाखों वर्षों तक जीऊँ या मृत्यु आज ही आ जावे।

अथवा कोई कैसा ही भय
या लालच देने आवे
तो भी न्याय-मार्गसे मेरा
कभी न पद डिगने पावे।७।

होकर सुखमे मग्न न फूलें, दुखमें कभी न घबरावे,
पर्वत नदी श्मशान भयानक अटवीमे नहि भय खावे,

रहे अडोल अकम्प निरन्तर
यह मन दृढतर बन जावे,
इष्ट-वियोग अनिष्ट-योगमे
सहनशीलता दिखलावे ।८।

सुखी रहें सब जीव जगत्के, कोई कभी न घबरावे,
बैर-भाव अभिमान छोड, जग नित्य नये मगल गावे,

घर-घर चर्चा रहे धर्मकी
दुष्कृत दुष्कर हो जावें,
ज्ञान-चरित उन्नत कर अपना
मनुज-जन्मफल सब पावें ।९।

ईति-भीति व्यापे नहि जगमे वृष्टि समयपर हुआ करे,
धर्मनिष्ठ होकर राजा भी न्याय प्रजाका किया करे,

रोग मरी दुर्भिक्ष न फैले
प्रजा शान्तिसे जिया करे,
परम अहिंसा-धर्म जगतमें
फैल सर्व-हित किया करे ।१०।

फैले प्रेम परस्पर जगमें, मोह दूरपर रहा करे,
अप्रिय-कटुक-कठोर शब्द नहि कोई मुखसे कहा करे,

बनकर सब 'युग-वीर' हृदयसे
देशोन्नतिरत रहा करें,
वस्तु-स्वरूप विचार खुशीसे
सब दुख-सकट सहा करें ।११।

अश्व सम्बोधन

(जन्मभूमिकी ओर ले जानेवाले अश्वसे)

हे अश्व क्यों विषण्ण-मुख हो तुम किस चिन्तामें घेरा है ?
पैर न उठना देख तुम्हारा खिन्न चित्त यह मेरा है

देखो पिछली टाँग पकड़कर
तुमको अधिक सताता है
और जोरसे चलनेको फिर
धक्का देता जाता है ।१।

कर देता है उलटा तुमको दो पैरोंसे खड़ा कभी
दाँत पीसकर ऐंठ रहा है कान तुम्हारे कभी-कभी

कभी तुम्हारे तीक्ष्ण-कुक्षिमें
मुक्के खूब जमाता है
अथवा कोपको खींच खींच यह
फिर-फिर तुम्हें नचाता है ।२।

सहकर भी यह घोर यातना तुम नहिं कदम बढ़ाते हो
कभी पुलकते पीछे हटते और उछलते जाते हो

मानो सम्मुख खड़ा हुआ है
सिंह तुम्हारे बलधारी
मार्गनाशसे पूर्ण तुम्हारी
भी मैं हूँ इस क्षण भारी ।३।

शायद तुमने समझ लिया है, अब हम मारे जायेंगे
इस दुर्बल औ दीन दशामे भी नहिं रहने पायेंगे

छाया जिससे शोक हृदयमें
इस जगसे उठ जानेका,
इसीलिए है यत्न तुम्हारा
यह सब प्राण बचानेका ।४।

पर ऐसे क्या बच सकते हो, सोचो तो, है ध्यान कहाँ
तुम हो निबल, सबल यह घातक, निष्ठुर, करुणा-हीन महा

स्वार्थ-साधुता फैल रही है
न्याय तुम्हारे लिए नहीं,
रक्षक भक्षक हुए, कहो फिर
कौन सुने फरियाद कहीं ।५।

इससे बेहतर खुशी-खुशी तुम वध्य-भूमिको जा करके,
वधिक-छुरीके नीचे रख दो निज सिर स्वयं झुका करके

आह भरो उस दम यह कहकर
"हो कोई अवतार नया,
महावीर के सदृश जगतमें
फैलावे सर्वत्र दया !" ।६।

पंडित नाथूराम, 'प्रेमी'

सम्भव है कुछ लोग पं॰ नाथूरामजीको न जानते हों, पर प्रेमीजीको सारा हिन्दी-संसार जानता है। 'प्रेमी' उपनाम इस बातका द्योतक है कि प्रारम्भमें आप कविके रूपमें ही साहित्यकी रंगभूमिमें उतरे थे। आज कवि 'प्रेमी'के जीवन-दीपकी स्निग्ध आभाको उस पंडित नाथूरामजीकी प्रखर प्रतिभाके सूर्यने मन्द कर दिया है जो देशके प्रसिद्ध लेखक हैं, सम्पादक हैं, इतिहासज्ञ हैं, समालोचक हैं, विचारक हैं और हैं हिन्दीकी सबसे मुख्य प्रकाशन-संस्था 'हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय' के सफल संचालक तथा जैन-साहित्यकी प्रमुख प्रकाशन-संस्था 'जैन-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय'के संस्थापक। स्वयं 'प्रेमी' जी ही उस कविको 'अतीतका गीत' मानने लगे हैं। वह अपने एक पत्रमें लिखते हैं —

"मैं कवि तो नहीं हूँ। लगभग ४०-४२ वर्ष पहले कवि बननेकी चेष्टा की थी, और तब बहुत वर्षों तक कवि कहलाया भी, परन्तु कवि बनते नहीं हैं, वे स्वाभाविक होते हैं। प्रयत्न करके कवि नहीं बना जाता, पर लेखक बना जाता है। सो मैं पद्य-निर्माता बनकर ही रह गया और पीछे धीरे धीरे पद्य लिखना भी छोड़ बैठा।

"अपनी रचनाओंको मैंने संग्रह करके नहीं रक्खा। संग्रह-योग्य वे थीं भी नहीं। ८-९ वर्ष पहले सुहृद्वर पं॰ जुगलकिशोरजी मुख्तारने 'मेरी भावना' साइजमें 'स्तुति-प्रार्थना' नामकी पुस्तिका छपाई थी। उसमें मेरी ५-६ रचनाएँ हैं। पर मेरे पास उसकी भी कोई कापी नहीं है।"

'प्रेमी'जीकी नम्रताने उन्हें नम्र बनाया है। वह अपनी कविताके विषयमें कुछ भी कहें, इसमें सन्देह नहीं कि ४० वर्ष पूर्व उनकी कविताओंने समाजमें नये युगका आह्वान किया, कवियोंको नई दिशा दिखाई, कविताको

नई शैली दी और कल्पनाको नये पख प्रदान किये। उन्होंने साहित्यका भी निर्माण किया है और साहित्यिकोंका भी!

उनकी दो-एक कविताएँ—एक 'सद्धर्म-सन्देश' और दूसरी 'मेरे पिताकी परलोक-यात्रापर' का अंश—यहाँ दी जाती हैं। अन्तकी रचनाके विषयमें 'प्रेमी' जीने लिखा है —

"यह मैंने सन् १६०६ में अपने पिताकी मृत्युके समय लिखी थी। .. उतनी अच्छी तो नहीं है, परन्तु मैंने रोते-रोते लिखी थी, इसलिए उसमें मेरी अन्तर्वेदना बहुत-कुछ व्यक्त हुई है।"

× × ×

जो भावुक कवि-हृदय अपने पिताकी मृत्युपर अप्रतिहत वेगसे फूट पड़ा था और जिसके आँसुओंके निर्झरमें कविता प्रवाहित हुई थी वह आज जीवनकी सध्यामें अपने जवान एकलौते बेटेको खोकर क्या अनुभव कर रहा है—इसको सोचते ही कल्पना काँप उठती है, बुद्धि कुठित हो जाती है।

साहित्य-जगत्‌की समवेदनाके आँसू, 'प्रेमी' जीके दुखको कुछ अंशोंमें बँटा सकें—यही कामना है।

सद्धर्म-सन्देश

मन्दाकिनी दयाकी जिसने यहाँ बहाई
हिंसा कठोरताकी कीचड़ भी धो बहाई
समता-सुमित्रताका ऐसा अमृत पिलाया
द्वेषादि रोग भागे मदका पता न पाया ।१

उस ही महान् प्रभुके तुम हो सभी उपासक
उस वीर वीर-जिनके सद्धर्मके सुधारक
अतएव तुम भी वैसे बननेका ध्यान रक्खो
आदर्श भी उसीका आँखोंके आगे रक्खो ।२

संकीर्णता हटाओ मनको बड़ा बनाओ
निज कार्यक्षेत्रकी अब सीमाको खूब बढ़ाओ
सब ही को अपना समझो सबको सुखी बना दो
औरोंके हेतु अपने प्रिय प्राण भी लगा दो ।३

ऊँचा उदार पावन सुख-शान्तिपूर्ण प्यारा
यह धर्म-वृक्ष सबका निजका नहीं तुम्हारा
रोको न तुम किसीको छायामें बैठने दो
कुल-जाति कोई भी हो सन्ताप मेटने दो ।४

जो चाहते हो अपना कल्याण मित्र करना
जगदेक-बन्धु जिनका पूजन पवित्र करना
जिस कौल करके करने दो चाहे कोई भी हो
कटते हैं पाप जगके कुल-जाति कोई भी हो ।५

सन्तुष्टि शान्ति सच्ची होती है ऐसी जिससे
ऐहिक क्षुधा पिपासा रहती है फिर न जिससे ,
वह है प्रसाद प्रभुका, पुस्तक स्वरूप, उसको
सुख चाहते सभी हैं, चखने दो चाहे जिसको ।६

यूरुप अमेरिकादिक सारे ही देशवाले
अधिकारि इनके सब है, मानव सफ़ेद-काले ;
अतएव कर सकें वे उपभोग जिस तरहसे ,
यह बाँट दीजिये उन सब हीको इस तरहसे ।७

यह धर्मरत्न धनिको ! भगवानकी अमानत ,
हो सावधान सुन लो, करना नहीं खयानत ,
दे दो प्रसन्न मनसे यह वक्त आ गया है ,
इस ओर सब जगत्का अब ध्यान लग रहा है ।८

कर्त्तव्यका समय है, निश्चिन्त हो न बैठो ,
थोड़ी बड़ाइयोंमें मदमत्त हो न ऐंठो ,
सद्धर्मका संदेशा प्रत्येक नारि नरमें
सर्वस्व भी लगा कर फैला दो विश्व-भरमें ।९

पिताकी परलोकयात्रापर

× × ×

इस प्रकार जब तक मैं रोता तब तक मिल करके सब लोग
अर्थि सजाकर चले सुविधिवत् देखा गया मुझे भी योग
पहुँचे वहाँ जहाँ अगणित जन जले आगमें सोते हैं
पुद्गल पिण्डोंके रूपान्तर जहाँ निरन्तर होते हैं ।१

पिता बना उस प्रेत-भूमिमें 'प्रेत' पिताका पचपचा
किया चरम संस्कार पवनमें प्रज्वलित हुई अनल माया
बाँस-बाँधकर बीच काढ़ तब धूम-ध्वजाने धधक-धधक
मिला दिया फिर जड़में जड़को कर धर्मोंको पृथक-पृथक ।२

की प्रदक्षिणा मैंने तब उस जलती हुई चिताको घेर
हृदय थाम कर प्रभु स्मरण किया निवेदन प्रभुसे टेर
"शान्ति-प्रदायक शान्तिनाथ जिन शोक शान्त सबका करके
जनक-जीवको शान्त-रूप जिन देना शरण कृपा करके" ।३

इस चरितको देख चित्त सबके ही हुए विरक्त विशेष
सरस हुए पाषाण-हृदय भी दुष्कर्मोंसे डरे अशेष
रहें निरन्तर यदि अन्तरमें ऐसे ही परिणाम कहीं
तो भवसे उद्धार पार होनेमें कुछ भी वार नहीं ।४

जीवन-लीलाकी समाप्ति यह पढ़के पाठक समझेंगे
जल बुद्बुद सम जीवन जगमें इसके लिए न उलझेंगे
स्व-स्वरूपका सदा चिन्तवन करके परको छोड़ेंगे
परके पोषक मोहक विषके लोभोंसे मुँह मोड़ेंगे ।५

श्री भगवन्त गणपति गोयलीय

आपका वास्तविक नाम श्री भगवानदास है, आपके पिताका नाम श्री गणपतिलाल था। कविताका कल्पवृक्ष आपके कुटुम्बमें सदा ही फूला फला है। आपके पितामह श्री भूरेलालजी मोदी आशुकवि थे।

भगवन्तजी बहुपाठी, विचारशील और प्रतिभावान् व्यक्ति हैं। हिन्दी-हिन्दुस्तानीके अतिरिक्त आपको बंगला, गुजराती और मराठीके साहित्यका भी अच्छा ज्ञान है।

आपकी गद्य-पद्यमय प्राथमिक रचनाएँ प्राय २५-३० वर्ष पहले 'विद्यार्थी' और 'भारतजीवन' नामक पत्रोंमें प्रकाशित हुई थीं। आपकी कविताओंको उस समय भी बडी रुचिसे पढ़ा जाता था। अनेक कवियोंको आपकी रचनाओंसे स्फूर्ति मिली और आपके विचारोंसे समाजमें जाग्रति हुई।

आप 'जातिप्रबोधक', 'धर्म-दिवाकर' और 'महाकोशल-कांग्रेस-बुलैटिन' के वर्षों तक सम्पादक रहे हैं। आपके लेख, कविताएँ और कहानियाँ भारतके प्रसिद्ध-प्रसिद्ध पत्रोंमें छपती रही हैं। 'जाति-प्रबोधक'में लिखी हुई आपकी कहानियोंको हिन्दुस्तान-भरमें देशी पत्रोंने उद्धृत किया और सुधारक-संस्थाओंने अनुवादित कर लाखोंकी संख्यामें बँटवाया। आपकी कहानियोंका संग्रह हिन्दीमें भी छपा था।

भगवन्तजी कर्मठ देश-सेवक हैं। आप रायपुर सेन्ट्रल-जेलकी काली कोठरियोंमें महीनों रहे और वहाँके "उच्च पदाधिकारियोंके आदेशपर आपको भयंकर मार मारी गई जिसकी आवाज नागपुर कौन्सिलसे टकराई।"

आपकी कविताओंमें सुकुमार भावना और कोमल अनुभूतिके दर्शन होते हैं। हृदय-गत भावको आप चुने हुए सरस शब्दोंमें व्यक्त करके पाठककी हृत्तन्त्रीको झनझना देते हैं।

सिद्धवरकूट

सिद्धवरकी ही असीम पुनीतता
पातकीको खींच से आई इधर
मैं नहीं आया न मेरा दोष है
हे अचल हूँ दीन हे धारज्ञवर !
फिर भला क्यों मौन है धारण किया
जानते हो क्या कि हूँ मैं पातकी
हाय तुम ही सोचने जब थी लगे
तो कभी कालिमें रही किस भावकी !
मौनका कुछ दूसरा ही हेतु है
गिरि न तुम यों सोचते होगे अरे
याद तो क्या पूर्व दिन हैं आ रहे
गर्व-मिश्रित सौख्य की आशा भरे—
जब कि मुनिगण ठौर-ठौर विराजके
या खड़े ही योग थे करते रहे
और फिर उपदेश दे चिर सुख-भरे
विश्वके विकराल दुख हरते रहे ।
तो उन्हींके विरहमें या ध्यानमें
इस तरह एकान्तमें एकाग्र हो
ध्यान क्या तुम कर रहे आनन्दसे ?
धन्य गिरिवर सिद्धवर, तुम धन्य हो !
या कि उनकी स्वार्थपरतापर तुम्हें
है निराश्रित-त्यक्त गिरि कुछ खेद है ?
जो विचारे निज अकेला मुझको
विहग-बालक ध्यानमें विक्षेप है ।

पर विटप तो नित्य हँसता खेलता
और 'हर-हर' गीत गाता सर्वदा ,
चन्द्रिकाके साथ करता मोद है ,
औ' न होता मग्न दुखमें एकदा ।
और तो फिर सोचते हो क्या भला ,
पूर्व वैभव ? आज भी वह कम नहीं ;
इस तुम्हारी धूलिका कण एक ही
विश्वकी सम्पत्तिसे मौलिक कहीं ।
सत्य है वह पुण्यकाल न अब रहा ,
वृक्ष भी तुमपर न उतने हैं भले ,
और फिर वे फल फलाते हैं नहीं ,
ऋतुमें क्यों फूलने फलने चले ?
बात ऋषियोंकी किनारे ही रही ,
आज उतने विहग क्या बसते यहाँ ?
इन्द्रका आना तुम्हें अब स्वप्न है ,
पतित पापी भी अरे आते कहाँ !
रो दिया खगकी चहकके व्याजसे
शान्त हो हे सिद्धवर, ढाढस धरो ,
नर्मदा भी है तुम्हारे दुःखसे
दुःखिनी, कुछ ध्यान उसका भी करो ,
नर्मदा तो आज भी रोती हुई
सिद्धवरके पूर्व वैभवकी कथा ,
कह रही है, बह रही वन मन्थरा ,
सान्त्वना देती हुई—'यह दुख वृथा !'।

२

यद्यपि तू कौन है यह तो तनिक

काम तेरे हैं अलौकिकता भरे

परिणमा देती उधर 'ॐकार' की

इधर इनके चरणमें मस्तक धरे।

क्या नहीं दृष्टान्त है जिनका रही

एक-सी हो उभय धारा तू यहां

जैन वैष्णव आदि सब ही एक हैं

एक उद्गम एक मुख सबका यहां।

मिटाकर, आओ यही अब भावना

वीर प्रभु-सा शीघ्र ही अवतार हो

जगमें दुर्भाव सारे नष्ट हों

मुक्त हों हम देशका उद्धार हो।

नीच और अछूत

नालीके मैले पानीसे मैं बोला सहगाम

"धीमे बह रे नीच कहीं तू मुझपर उचट न जाय"।

"भला महाशय" कह पानीने भरी एक मुस्कान

बहता चला गया गाता-सा एक मनोहर गान।

एक दिवस मैं गया नहाने किसी नदीके तीर,

ज्यों ही जल मज्जनमें लेकर मलने लगा शरीर।

त्यों ही जल बोला "मैं ही हूं उस नालीका नीर"

अचंभित हुआ काठ मारा-सा मेरा सकल शरीर।

उस क्षण तोड़ी 'मुँहमें पानी' यह बोली मुसकाय—

'मोह महाशय बनी हुई मैं नालीका जल पान।

फिर क्यों मुझ पापी को मुँह में देते हो महराज",

सुनकर उनके बोल हुई [illegible], मुझको भारी लाज ।

गानेको बैठा, [illegible] ज्यों ही [illegible] [illegible],

त्यों ही बोला बाल उठा झट निकट [illegible]—

"नालीका जल हम सबने पा लिया एक दिन पान,

मन नीच हम नहीं हुए फिर क्यों गाते श्रीमान् ?"

तब [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] जमात,

जिनसे फरक उठा हर्षित हो [illegible] सारा गात ।

मैं यों गाने लगा कि "आओ, आओ, सुन्दर घनवृन्द,

बरसो, धन्य बढाओ, जिससे हो हमको आनन्द ।"

वे बोले, "हे बन्धु, सभी हम हैं अछूत औ नीच,

क्योंकि पनालीके जलकण भी हैं हम सबके बीच ।

यहीं अछूतोंमें ही जाकर बरसेंगे जो खोल

उनके धान्य बढ़ेंगे, होगा उनको हर्ष अतोल ।"

मैं बोला, "मैं भूला था, तब नहीं मुझे था ज्ञान,

नीच ऊँच भाई-भाई हैं भारतकी सन्तान ।

होगा दोनों बिना न दोनोंका कुछ भी निस्तार,

अब न करूँगा उनसे कोई कभी बुरा व्यवहार ।"

वे बोले, "यह सुमति आपकी करे हिन्दका त्राण,

उनके हिन्दू रहनेमें है भारतका कल्याण ।

उनका अब न निरादर करना, बनना भ्रात उदार,

भेद भाव मत रखना उनसे, करना मनमे प्यार ।"

पंडित मूलचन्द्र 'वत्सल'

विद्यारत्न पं० मूलचन्द्रजी 'वत्सल' साहित्यशास्त्री समाजके पुराने सरस कवि हैं। पच्चीस वर्ष पूर्व आप कविताके क्षेत्रमें प्रविष्ट हुए थे। उस समय खड़ी बोलीकी कविताओंका जैन कविता-क्षेत्रमें अभाव-सा था। आपके द्वारा प्रवाहित काव्यधाराने एक नवीन दिशाका प्रवर्तन किया। जाति-सुधार और सामाजिक क्रान्तिके लिए आपकी कविताएँ वरदान सिद्ध हुईं। काव्य-क्षेत्रमें आपने जिस निर्भीकताका परिचय दिया वह स्तुत्य है। आप जैन पौराणिक कहानियों और नई शैलीके गद्य लेखोंके प्रमुख प्रचारकों और मार्ग-दर्शकोंमेंसे हैं।

आपकी प्रतिभा बहुमुखी होनेके अतिरिक्त सदा-जागृत है। हिन्दीकी काव्य-धारा परिस्थितियों और प्रभावोंके आधीन जो दिशा पकड़ती गई, आप तत्परतासे स्वयं उसका अनुगमन ही नहीं करते रहे किन्तु समाजके कवियोंका नेतृत्व भी करते रहे हैं।

अमरत्व

मैं अग्निकणोंसे खेलूँगा।
यह धाँय-धाँय पर्वतमाला रे बढ़ी आ रही है ज्वाला
मैं उसको पीछे ठेलूँगा मैं अग्नि कणोंसे खेलूँगा।
मैं तो लहरोंसे खेलूँगा।
रे यह उन्मत्त सागर कैसा लहराता प्रलयंकर कैसा
मैं उसे करोंपर ले लूँगा मैं तो लहरोंसे खेलूँगा।
मैं मृत्यु-किरणसे खेलूँगा।
मैं अमर अरे कब मरता हूँ अमरत्व लिये ही फिरता हूँ
मैं यम-दण्डोंको झेलूँगा मैं मृत्यु-किरणसे खेलूँगा।

मेरा ससार

दुख भरा ससार मेरा ।

हर्ष यहा है वेदनामे

नाच आशोका चरण ।

कुचले हृदयका, करुण क्रन्दन-नाद इसमें ,

ग महा सन्ताप है अवसाद इसमें ,

अश्रु-पूरित लोचनोंमें

है समाया प्यार मेरा ।

दुख भरा ससार मेरा ।

न सुन बधिर-सा हो गया है यह गगन तल ,

ले बन गये हैं, आह, मेरे चित्र उज्ज्वल ,

कौन हलका कर सकेगा ?

वेदनाका भार मेरा ।

दुख भरा ससार मेरा ।

ससार मेरे करुण रोदनको बहाना ,

उन्माद मेरा, आह, किसने आज जाना ,

कौन सुनता है, अरे, यह

मौन हाहाकार मेरा ।

दुख भरा ससार मेरा ।

प्यार !

सजनि है कैसा जगका प्यार ?

स्वर्णिम रश्मि-राशिसे जगमग
उरस कुसुमसे विकसित कर जग
निर्मम रवि है सजनि
उनका करता है संहार।

निशिका चंचल चीर फाड़कर,
उज्ज्वल निज माला प्रसारकर,
उनका कर संहार पूर्णिमा—
सजती निज शृंगार।

कलिकाओंका हृदय बिंधाकर,
अपने उनका साज सजाकर
उनकी पीड़ा भूल भरे—
मधु बन जाता है हार।
सजनि है कैसा जग-व्यवहार !

श्री गुणभद्र, अगास

पं० गुणभद्रजीको समाजमें कविके रूपमें आदर मिला है और इस आदरको उन्होंने परिश्रम और साधनाके द्वारा प्राप्त किया है। कविताके अनेक रूप हैं, अनेक शैलियाँ हैं। कवि जब साहित्यके किसी विशेष अगको अपना कार्य-क्षेत्र बना लेता है तो उसकी शैली उसी दिशामें स्थिर-सी होती चली जाती है। श्री गुणभद्रजीने परम्परागत कथा-कहानियोको पद्य-बद्ध करनेका जो कार्य प्रारम्भमें हाथमें लिया था, उसे वह सफलतासे सम्पन्न करते चले जा रहे हैं। नि सन्देह उनकी शैली मुख्यत वर्णनात्मक है, भावात्मक नही। किन्तु लम्बी कथाओंको भावात्मक शैलीमें रचनेके लिए कविको बहुत समय चाहिए, सुरुचिपूर्ण क्षेत्र चाहिए और निरापद साधन चाहिए। दूसरे, प्रत्येक कवि 'साकेत' नहीं लिख सकता, शायद 'जयद्रथ-वध' लिख सकता है। फिर भी, आज जो 'जयद्रथ-वध' लिख रहा है उससे कल हम 'साकेत' की आशा कर ही सकते हैं। कविको साधनकी भी आवश्यकता होती है और साधनाकी भी।

गुणभद्रजीने साहित्यके एक उपेक्षित अगको लिया है और उसे वे अपनी रचनासे प्रकाशमें ला रहे हैं। इस दिशामें उनका प्रयास अपने ढगका अनूठा है। कितने ही उठते हुए कवियोंको उनसे स्फूर्ति और प्रेरणा मिली है। साहित्यकी बहुमुखी आवश्यकताओंके आधारपर गुणभद्रजीको युग-प्रवर्तकोंमें स्थान मिलना ही चाहिए।

आपने अब तक निम्न-लिखित छै ग्रन्थोंकी रचना की है—'जैन-भारती', 'रामवनवास', 'प्रद्युम्नचरित', 'साध्वी', 'कुमारी अनन्तमती' और 'जिन-चतुर्विंशति-स्तुति'।

सीताकी अग्नि परीक्षा

× × ×

"हे नाथ दो आदेश कर विषपान दिखलाऊँ यहाँ
अथवा भयंकर सर्पको करसे पकड़ लाऊँ यहाँ।
पर अग्निमें जगकी शिला दूँ शील कहते हैं जिसे
वह कृत्य कर सकती कभी मानव न कर सकता जिसे।"

श्री राम बोले "जानता मैं शील तव निर्दोष है
तो भी कुटिल यह जग मुझे देता निरन्तर दोष है।
कुछ अग्निके ही कुण्डमें अपनी परीक्षा दो हमें
जिससे तुम्हारे शीलका 'सन्देह' जगतीमें थमे।

× × ×

अपनी परीक्षाके समय जनकात्मजा बोली यही
"मनसे वचनसे कायसे परको कभी चाहा नहीं।
यदि हे अनल मिथ्यावचन हो भस्म कर देना मुझे
कैसी सदा मैं नियममें हूँ यह बताना है तुझे।"

शुभ जाप करती मन्त्रका उस कुण्डमें कूदी तभी
तत्काल निर्मल नीरसे वह भर गई वापी तभी।
कुछ काल पहले हा महा विकराल ज्वाला थी जहाँ
अम्बुज सरोवर पद्मिनीमय शोभता सुन्दर वहाँ।
सुन्दर सरोवर मध्य देवी-सी विराजी जानकी
शुभ सत्यके रक्षार्थ भी परवा न की निज प्राणकी।

(एक भक्त)

भिखारीका स्वप्न

एक था भिक्षुक जगतका भार था,
माँगके खाना सदा व्यापार था,
बाँधके रहता नगर-तट झोपडी,
हा, बिताता कष्टसे अपनी घडी।१

थी न उसको विश्वकी चिन्ता बडी,
था सहा करता सभी बाधा कडी,
द्रव्यवानो-सा न उसका ठाठ था,
खाटपर कर्कश पुराना टाट था।२

पासमें था एक पानीका घडा,
ओढनेको था फटा कम्बल कडा,
मक्षिकाएँ भिनभिनाती थीं वहाँ,
मच्छरोंकी भी कमी उसमें कहाँ।३

माँग लाता रोटियाँ जो ग्रामसे,
बैठके खाता बडे आरामसे,
भोज्य जो खाते हुए बचता कहीं,
टाँग देता एक कोनेमें वहीं।४

और सो जाता निकटके तरु तले,
नींदमें जाते पहर उसके चले,
एक दिन मिष्टान्न भिक्षामें मिला,
प्राप्त कर उसका हृदय पकज खिला।५

मग्न था वह हर्ष पारावारमें
स्वर्गपद पाया मनो आहारमें
था उसे दुग्ध स्वच्छ शीतल जल पिया
हो गया था तृप्त-सा उसका हिया ।६

फिर बिछाकर खाट टूटी प्रेमसे
सो गया भिक्षुक बड़े ही क्षेमसे
दीर्घ मात्रा स्वप्न तब उसको भया
विश्वका अधिराज मैं हूँ हो गया ।।७।।

झोपड़ी मिटकर हुई प्रासाद है
अब उसीपर पक्षियोंका नाद है
भीतरी सब भाग हीरोंसे जड़े
दास जोड़े हाथ द्वारोंपर खड़े ।

बालकोंकी भी रही है त्रुटि नहीं
हो गई सम्पूर्ण वह मेरी मही
दिव्य था आभूषणोंसे गात्र भी
था बना लावण्यका शुभ पात्र ही ।९

दिव्य देवी मञ्चपर वह शोभती
नारियोंके मुग्ध मनको मोहती
दासियाँ पंखा डुलाती थीं खड़ी
सौख्यकी देवी न थी ऐसी बड़ी ।१

स्वप्नमें साम्राज्य उसने पा लिया,
मानवश भी दण्ड कितनोको दिया,
शत्रु चढ आया तभी उस राज्यपर,
सामने लडने चला वह शीघ्रतर।११

देखके हथियार सब उसके नये,
रकके दृग शीघ्र भयसे खुल गये,
रह गया चित्राम-सा दृगको मले,
सोचता क्या भोग मुझको थे मिले।१२

ले गया है कौन अब उनको छुडा,
हो रहा मुझको यहाँ विस्मय बडा,
सौम्य-सी इक सृष्टि जो देखी नई,
वह अचानक लुप्त क्योकर हो गई।१३

स्वप्नसे ही लोकके ये भोग है,
खेद! उसमें मर्त्य देते योग है!
सोचिये तो स्वप्न-सा ससार है,
धर्म इसमें सार सौ सौ बार है।१४

युगानुगामी

पंडित चैनसुखदास, न्यायतीर्थ, कविरत्न

एक साहित्यिकके नाते, प० चैनसुखदासजीका स्थान जैनसमाजके विद्वानोंमें बहुत ऊँचा है। आप प्रतिभा-सम्पन्न सफल कवि तो हैं ही, साहित्यके अन्य क्षेत्रोंपर भी आपका अधिकार है। गद्य-लेखक, गल्प-कार, सम्पादक और ओजस्वी वक्ताके रूपमें आपने साहित्य और समाजकी सेवा की है। इसके अतिरिक्त, आप स्वतन्त्र-विचारक और समाज-सुधार सम्बन्धी आन्दोलनोंमें प्रमुख भाग लेनेवाले कर्तव्य-निष्ठ नेता भी हैं।

प० चैनसुखदासजी लगभग २५-३० वर्षसे साहित्यिक क्षेत्रमें आये हुए हैं। आप जब १५ वर्षके थे तभी उस समयकी प्रमुख सस्कृत पत्रिका 'शारदा' में साहित्यिक लेख और सरस कविताएँ लिखा करते थे। सस्कृतकी पद्यरचनामें आप आशु-कवि हैं। आपमें धाराप्रवाह रूपसे सस्कृत गद्य लिखने और बोलनेकी क्षमता है।

आपकी कविताओंमें रस भी है और ओज भी। यह दार्शनिक तत्त्वको सुन्दर पदावलि द्वारा आकर्षक ढगसे कहते हैं। तत्त्वकी गहनताको भाषाकी सरसता द्वारा सजाकर आप अपनी कवितामें रहस्यवादकी झलक ले आते हैं, इससे कवितामें विशेष चमत्कार उत्पन्न हो जाता है।

आपके सस्कृत ग्रन्थ 'भावनाविवेक' और 'पावन-प्रवाह' प्रकाशित हो चुके हैं। आप भादवा (भैसलाना)के रहनेवाले हैं और आजकल जयपुरमें 'दिगम्बर जैन महा पाठशाला'के प्रधानाध्यापक हैं।

सत्ताका अहंकार

तेरा आकार बना कैसे सागर, अथवा इतना विशाल ?

हैं बिन्दु-बिन्दुमें अन्तर्हित
तेरा गाम्भीर्य अपार अतल
इनकी समष्टि यदि बिखर तो
दीखे न कहीं वसुधाम जल ।

तेरा स्वरूप तब हो विलुप्त जो आज बना इतना कराल ।

तेरी सत्ताका क्या स्वरूप
इस बिन्दु-बिन्दुसे है विभिन्न ?
तू है अज्ञात अपरिचित-सा
इस विश्व तथ्यमें अहमन्य ।

है श्रेय बता किसको इनका जो कुछ भी हैं तेरे कमाल ?

एकैक बिन्दुने आ-आकर
तेरा आकार बनाया है
अपने तनको तुझको देकर
तेरा गाम्भीर्य बढ़ाया है ।

जो जीवनतत्त्व बने तेरे क्यों जीवन-पथ हैं तन्तुजाल ।

जिनसे इतना वैभव पाया
उनको मत फेंक परे प्रमत्त
तू इनसे बना न ये तुमसे
इनको क्या है तेरा महत्त ।

–सब हँसते हैं ये देख-देख उपहास जनक तेरी उछाल !

इनके विनाशमें नाश, और
इनके सरक्षणमें रक्षा,
तेरी है, सागर, निराबाध
यह जीवन-रक्षणकी शिक्षा।

तू मान, निरापद है यह पथ, होगा इससे तू ही निहाल।

जीवन-पट

जीवन-पट यह बिखर रहा है
तन्तु जाल सब क्षीण हो गया
सारा स्तम्भक तत्त्व खो गया,
पलभर भी अब रहना इसमें
भगवन्, मुझको अखर रहा है।

सम्मोहनकी मधुमय हाला
पी-पीकर मैं था मतवाला,
नशा आज उतरा है अब तो
जीवन मेरा निखर रहा है।

मृत्यु-लहरपर खेल रहा मैं
सब विपदाएँ झेल रहा मैं,
अन्तर्द्वन्द्व मचा प्राणोमें
यह समीर मन मथित रहा है।

अन्तिम वर

बहता-बहता अब आया हूँ
तेरे भी चरणोंमें भगवन्
अपनेको लाया हूँ।

अहंकारके पथमें भटका
पता न पाया तेरे तटका
भूला था इस निश्च तथ्यको—
मैं तेरी छाया हूँ।

कभी न जाना क्या अपना है
क्या जीवन सचमुच सपना है
क्या यह ही कल्पना जगता है
तू है मेरा आत्मतत्त्व
औ' मैं तेरी काया हूँ।

केवल अब यह वर पाना है
इसीलिए मेरा आना है
फिर न रहूँ तेरे समक्षमें
मैं तेरी माया हूँ।

पंडित दरबारीलाल 'सत्यभक्त'

'सत्य-धर्म'के संस्थापक, पंडित दरबारीलालजीने, व्यक्ति और कवि दोनों रूपमें समाज और साहित्यमें अपना विशेष स्थान बनाया है। वह उच्च कोटिके लेखक हैं, विद्वान् हैं, विचारक हैं और कवि हैं। जीवनमें जिस साधनाका मार्ग उन्होंने अपनाया है और जिस मानसिक उथल-पुथलके द्वारा वह उस मार्ग तक पहुँचे हैं, उसमें उनका दार्शनिक मन और भावुक हृदय दोनों समान रूपसे सहायक हुए हैं—कुछ आलोचक हैं जो कहेंगे, 'सहायक' नहीं, 'बाधक' हुए हैं।

जो भी हो, इसमें सन्देह नहीं कि 'सत्यभक्त' जी बहुत ही संवेदनाशील कवि हैं। उनकी कविता जब हृदयके भावों और मानसिक द्वंद्वोंके स्रोतसे प्रवाहित होती है, तो उसमें एक सहज प्रवाह और सौन्दर्य होता है। जिस प्रकार वह विचारोंको सुलझाकर मनमें बिठाते हैं और दूसरों तक पहुँचाते हैं, उसी प्रकार उनके भाव भी कविताका रूप लेनेसे पहले स्वयं सुलझ लेते हैं। उनकी समवेदनाएँ पाठकोंके हृदयको छूकर ही रहती हैं। यह उनकी रचनाकी बहुत बड़ी सफलता है। जो कविताएँ प्रचारात्मक हैं या किसी आवश्यकताको पूरा करनेके लिए लिखी गई हैं, वे इस श्रेणीमें नहीं आतीं।

'सत्यभक्त'जीने 'सत्यसन्देश' और 'संगम' नामक पत्रिकाओं द्वारा हिन्दी संसारकी ही नहीं, मानव-संसारकी सेवा की है, और कर रहे हैं। उनके लेख मननीय और संग्रहणीय होते हैं। विश्वके अनेक धर्मोंका मनन, सन्तुलन और समन्वय करके 'सत्यधर्म'की प्रतिष्ठापना करना—आपने जीवनका लक्ष्य बनाया है। वर्धामें 'सत्याश्रम'की स्थापना करके अब आप वहीं रहते हैं।

उलाहना

कोमल मन देना ही था तो
क्यों इतना चैतन्य दिया ?
जिसपर भूधर-भार लादकर
क्यों यह निर्दय प्यार दिया ?

यदि देते जड़ता जगके दुख
नष्ट नहीं कुछ कर पाते
त्रिविध-तापसे पीड़ित करके
मेरी शान्ति न हर पाते।

जड़तामें क्या शान्ति न होती ?
अच्छा है जड़ता पाता
किसका लेना, किसका देना
वीतराग-सा बन जाता।

अपमानका भय, कर्तव्योंकी—
रहती फिर कुछ चाह नहीं
तुम सुख देते या दुख देते
होती कुछ परवाह नहीं।

लड़ते जीव जगके सबसे,
मेरा क्या जाता आता ?
दुखियोंकी आहोंसे भी यह
हृदय नहीं जलने पाता।

विधवाओंके अश्रु न मेरी
नजरोमे आने पाते,
नही आँसुओंकी धारासे
ये कपोल धोये जाते।

'हाय, हाय' चिल्लाता जग, पर
होते कान न भारी ये,
नही सुखाती, नही जलाती,
चिन्ताकी चिनगारी ये।

जड होकर जडके पूजनमें
'निज' 'पर' सब भूला रहता,
दुनियाके दुखकी चिन्ताका
बोझ हृदयपर क्यो सहता ?

पर, जो हुआ, हो गया, अब क्या,
अब तो इतना ही कर दो,
मनको वज्र बना दो, उसमें
साहस और धैर्य भर दो।

'रोना' तो मैं सीख चुका हूँ,
अब कुछ 'करना' बतला दो,
इस कर्तव्य-यज्ञमें बढकर
हँस-हँस मरना सिखला दो।

कब्रके फूल

कब्रपर आज चढ़ाये फूल !
जब तक जीवन था तब तक क्षणभर न रहे अनुकूल ।

कण-कणको तरसाया क्षण-क्षण मिला न अणु-भर प्यार
अब आँखोंसे बरसाते हो मुक्ताओंकी धार ।

देह जब आज बनी है धूल
कब्रपर आज चढ़ाये फूल !

आज धूल भी अंजन-सी है नयनोंका शृंगार
काला ही काला दिखता था तब हीरेका हार ।

कण्टक था तब पेड़ बबूल
कब्रपर आज चढ़ाये फूल !

विस्मृतिके सागरमें मेरी डुबा रहे थे नाव
नाम न लेते थे कहते थे हो न क्षमम बर्ताव ।

मगर अब गये भूलना भूल
कब्रपर आज चढ़ाये फूल !

सदा तुम्हारे लिए किया था तन-जीवनका त्याग
सींच-सींच करके आँसुओंसे हरा किया था बाग ।

मगर तब हुए फूल भी शूल
कब्रपर आज चढ़ाये फूल !

अब न कब्रमें आ सकती है इन फूलोंकी बास
मुझे शान्ति देती है केवल यही कब्रकी घास ।

शान्त रहने दो जाओ भूल
कब्रपर आज चढ़ाये फूल !

पंडित नाथूराम डोंगरीय

पंडित नाथूरामजी डोंगरीय समाजके सुपरिचित लेखकों और कवियोंमें अपना विशेष स्थान रखते हैं। आपके लेख अनेक जैन और जैनेतर पत्रोंमें छपते रहते हैं जो विषय भाषा और भावकी दृष्टिसे पठनीय होते हैं।

इन्होंने हाल हीमें एक पुस्तक लिखी है "जैनधर्म" जिसमें जैनधर्मके मुख्य मुख्य सिद्धान्तोंका सरल और प्रभावपूर्ण भाषामें प्रतिपादन किया है। आपने 'भक्तामर स्तोत्र'का पद्यानुवाद रुबाइयोंकी तर्ज-शैलीमें किया है जो प्रकाशित हो चुका है।

आपकी कविताएँ विचार और भावकी दृष्टिसे अच्छी होती हैं।

मानव मन

विश्व रंगभूमें प्रवृत्त रह
बनकर योगिराज-सा मौन
मानव-जीवनके अभिनयका
संचालन करता है कौन?

जिसके इंगितपर संसृतिमें
ये मन मारे फिरते हैं
मृग-तृष्णामें शान्ति-सुधाकी
आश कल्पना करते हैं।

आशा और निराशाओंकी धारा कहाँ बहा करती
अभिलाषाएँ कहाँ निरन्तर नवगीत करती रहतीं?

क्षण भंगुर यौवन-शरीर यह
ठगता है इतना कौन,
रूप-राशि पर मोहित होकर
शिशु-सम मचला करता कौन ?

बिन पग बिना विमान विचरता
करे कौन स्वच्छन्द विहार,
बन सम्राट्, राज्य बिन किसने
कर पाया सबपर अधिकार ?

रोकर कभी बिहँसता है तो फिर चिन्तित हो जाता है,
भाव-भङ्गिसे नित गिरगिट-सम नाना रंग बदलता है।

चित्र विचित्र बनाया करता
बिन रँग ही रह अन्तर्धान,
किसने चित्र कलाका ऐसा
पाया है अनुपम वरदान ?

प्रिय मन, तेरी ही रहस्यमय
यह सब अजब कहानी है,
कर सकता जगतीपर केवल,
मन, तू ही मनमानी है।

किन्तु वासनारत रहता ज्यों, त्यों यदि प्रभु चरणोंमें प्यार,
करता, तो अब तक हो जाता भव-सागरसे बेडा पार।

श्री सूर्यभानु डाँगी, 'भास्कर'

डाँगी सूर्यभानुजी बड़ी सादड़ी (मेवाड़)के रहनेवाले हैं। लगभग १०-१२ वर्षसे कविताएँ लिख रहे हैं जो प्रायः पत्रोंमें प्रकाशित हुई हैं। आप पं. दरबारीलालजी 'सत्यभक्त'के सहयोगी हैं और अपनी रचनाओंमें सत्यधर्मके सिद्धान्तोंका प्रचार करते हैं—जो धार्मिक कविताके लिए खासे ही उपयुक्त विषय रहे हैं। आपकी कविताएँ बहुत सरल भावपूर्ण और सङ्गीतमय होती हैं।

विनय

मम हृदय-कमल विकसित कर रे
यह विनय विमल उरमें भर रे।

दिनकर बनकर सघन गगनपर
रविकर मनहर अरुण वरण भर
अन्तरमें छिपकर अन्तरतर
चमक चमचम चिरस्थिर रे।
मम हृदय-कमल विकसित कर रे।

स्नेह-सुधाका स्रोत बहा दे
शिव-सुखमय सुषमा सरसा दे
लोल ललित लहरी लहरा दे
चिन्मयमय जीवन भर रे।
मम हृदय-कमल विकसित कर रे।

प्रभु मित्रपर एक भावना
त्रिभुवनकी कल्याण कामना
'सूर्यभानु' की यही प्रार्थना
वितरित करना घर घर रे।
मम हृदय-कमल विकसित कर रे।

संसार

अपनी सुख-दुखकी लीलासे वना हुआ सारा ससार।

अणु-अणु परिवर्तित है प्रति पल
इसीलिए कहलाता चचल

सत्व रूपसे अचल, विमल है नित्यानित्य विचार,
अपनी सुख-दुखकी लीलासे वना हुआ सारा ससार।

अभी जन्म है, अभी मरण है
अभी त्रास है, अभी शरण है।

धूप-छाँह सम, हास-अश्रुमय जीवनका सचार,
अपनी सुख-दुखकी लीलासे वना हुआ सारा ससार।

अभी वाल है, अभी युवा है
अभी वृद्ध है, अभी मुवा है

कैसा रे परिवर्तनमय है यह निष्ठुर व्यापार,
अपनी सुख-दुखकी लीलासे वना हुआ सारा ससार।

यहाँ कहाँ रे शान्ति चिरन्तन
कर्म-दलोका निविड निवन्वन

'सूर्यभानु' है सग निरन्तर सृजन और महार,
अपनी सुख-दुखकी लीलासे वना हुआ सारा ससार।

श्री हरदास

आप अमरावतीके निवासी हैं; वयोवृद्ध हैं। अमरावती (बरार) वहाँकी खास भाषा मराठी है और वहाँपर एक भी हिन्दी स्कूल नहीं था वहाँ आपने प्रयत्न करके अनेक हिन्दी-स्कूल खुलवाये हैं । आप हेड-मास्टर थे और अब अवकाश ले लिया है ।

आपकी कविताएँ जैन-पत्रोंमें प्रकाशित होती रहती हैं । आप अपनी रचनाओंमें पारमार्थिक भावोंका बड़ी सुन्दरतासे आधुनिक शैलीमें दिग्दर्शन करते हैं ।

मनकी बातें

घिर जाता हूँ चिन्ताघनमें
दुख-सागरमें गोते खाता
इसकी साध न पूरी होती
रह-रहकर फिर-फिर अकुलाता ।१

व्यथित हृदयकी मर्म-वेदना
सन्तापोंकी ज्वाल जलाती
खींच खींचकर स्वरलहरीको
उर तन्त्रीके तार बजाती ।२

समझ-समझ पीड़ाको क्रीड़ा
हो उन्मत्त उसे अपनाया
कंटक-पथपर चलकर, रे मन
खोया बहुत न कुछ भी पाया ।३

पथिक

भूले पथिक कहाँ फिरते हो ?
थिर हो बैठ हृदयमें सोचो भ्रमित कालसे क्या करते हो ?

मार्ग विपर्यय है यह तेरा
प्रणय असुरने किया अँधेरा
विषय-व्यालने तुझको घेरा

ज्ञान-प्रकाश बना जीवनमें
जनम-मरण दुख क्यों भरते हो ?

करण-कण्टकाकीर्ण विपिनमें
मनोवृत्तियोंके भव वनमें
राग द्वेषके घस्म सघनमें

मायाके दुर्दम्य जालमें
जान-बूझ क्यों पग धरते हो ?

तेरा है किससे क्या नाता
सोच अरे, क्यों भूला जाता
काम-क्रोध-मद क्यों अपनाता ?

कुटिल कालके चंगुलमें फँस
भग्न-कूपमें क्यों गिरते हो ?
भूले पथिक, कहाँ फिरते हो ?

पंडित शोभाचन्द भारिल्ल, न्यायतीर्थ

श्री शोभाचन्द भारिल्ल, न्यायतीर्थ, सस्कृत-हिन्दीके विद्वान् हैं। आप जैन-गुरुकुल व्यावरमें अध्यापक हैं। बहुत अरसेसे लेख और कविताएँ लिख रहे हैं जिनका धार्मिक जगत्में पर्याप्त आदर है।

आपने अपने बडे भाई श्री रामरतन नायकके 'असामयिक वियोगके तीव्रतर सन्तापकी उपशान्तिके लिए'—'भावना' नामक कविता लिखी है, जो प्रकाशित है। सस्कृत 'रत्नाकरपच्चीसी'का हिन्दी पद्यानुवाद भी व्यावरसे प्रकाशित हुआ है। आपकी कविताएँ आध्यात्मिक और तत्त्वदृष्टिसे हृदयग्राही होती हैं।

अन्यत्व

(१)

पहले था मैं कौन, कहाँसे आज यहाँ आया हूँ,
किस-किसका सवव अनोखा तजकर क्या लाया हूँ ?
जननी-जनक अन्य हैं पाये इस जीवनकी वेला,
पुत्र अन्य है, पौत्र अन्य है, अन्य गुरू है चेला।

(२)

पूर्व भवोमें जिस कायाको वडे यत्नसे पाला,
जिसकी शोभा वढा रही थी माणिक-मुक्ता-माला।
वह कण-कण वन भूमडलमें कही समाई भाई,
इसी तरह मिटनेवाली यह नूतन काया पाई।

(३)

शैशव भव्य भव्य यौवन है है वृद्धत्व निराला
सारा ही संसार सिनेमाके से दृश्योंवाला।
इन मधुर भावोंसे न्यारा ज्योति-पुञ्ज चेतन है
मूर्ति-रहित चैतन्य-ज्ञानमय निश्चेतन यह तन है।

(४)

मैं हूँ सबसे भिन्न अन्य अस्पृष्ट निराला
आत्मीय-सुख-सागरमें नित रमनेवाला।
सब संयोगज भाव ये रहे मुझसे चोखा
हाय न जाना मैंने अपना रूप अनोखा।

आज और कल

जो है आज जरा-सा छोटा
चंचल उन्नत और किशोर
कल वह होगा युवा सयाना
बूढ़ोंका भी बूढ़ा नाना।१

छोटी-सी अधखिली कली है
जिसमें मकरन्द भरी है
कल वह सुन्दर सुमन बनेगी
शाखासे गिर, धूल मिलेगी।२

(३)

शैशव मध्य अन्त्य यौवन है है वृद्धत्व निराला
सारा ही संसार सिनेमाजैसे दृश्योंवाला ।
इन मधुर भावोंसे न्यारा ज्योति-पुञ्ज चेतन है
मूर्ति-रहित चैतन्य-ज्ञानमय निश्चेतन यह तन है ।

(४)

मैं हूँ सबसे भिन्न अन्य अस्पृष्ट निराला
आत्मीय-गुण-आकरमें नित रमनेवाला ।
सब सर्वोत्तम भाव दे रहे मुझको धोखा
छूय न जाना मैंने अपना रूप अनोखा ।

आज और कल

जो है आज जग-सा छोटा
चपल चञ्चल और किशोरा
कल वह होगा वृद्ध सयाना
बूढ़ोंका भी बूढ़ा नाना ।१

छोटी-सी अधखिली कली है
जिसमेंमें अल्पज्ञ अली है
कल वह सुन्दर सुमन बनेगी
धाराशे गिर, धूल बनेगी ।२

श्री रामस्वरूप 'भारतीय'

'भारतीय'जी समाजके पुराने लेखकोंमेंसे हैं। प्राय १० वर्ष पूर्व इनकी रचनाएँ 'देवेन्द्र'में तथा अन्य जैन और जैनेतर पत्र-पत्रिकाओंमें निकला करती थीं। ये कर्मशील व्यक्ति हैं। इनमें समाज-सेवा और देश-सेवाकी लगन है, विचार भी मँजे हुए और उदार हैं।

आपकी कविताएँ ओजपूर्ण और शिक्षाप्रद होती हैं। भाषामें प्रवाह है, और भावोंमें स्पष्टता। आपकी एक कविता-पुस्तक 'वीर पताका' वहुत पहले श्री 'महेन्द्र'जीने प्रकाशित कराई थी। आप उर्दूके भी अच्छे लेखक हैं। उर्दूकी पुस्तक 'पैग़ामे हमदर्दी' आप हीने लिखी है।

अगस्त आदोलनमें भारत-रक्षा-कानूनके आधीन जेल-यात्रा कर आये हैं। जेलमें इन्होंने अनेक कविताएँ और सस्मरण लिखे हैं।

समाधान

भिन्न-भिन्न सुमनोंमें समान गन्ध न होगी,
भिन्न-भिन्न हृदयोंमें एक उमग न होगी,
कोटि यत्न हो मत-विभिन्नता वन्द न होगी,
शान्ति न होगी हीन वुद्धि यदि मन्द न होगी।

सवके मनमें शक्ति है तर्क स्वतन्त्र विचारकी,
सवको चिन्ता है लगी अपने शुभ उद्धारकी।

कुछ ऐसे हैं जिन्हें जगतसे परम प्यार है,
प्राच्य कीर्ति है इष्ट, पुण्य श्रद्धा अपार है,
कुछ ऐसे हैं जिनपर युगका रँग सवार है,
मनमें साहस है, उमग है, जाति प्यार है।

अभिलाषा

विपदाओंके गिरि गिर सिरपर
टूट पड़ें पड़ जावें
मेरे निश्चित मार्गमें अगणित
विघ्न अड़ें अड़ जावें।

एक ओर संसार दूसरी ओर अकेला होऊँ
पर निराश साहस-विहीन हो कोने बैठ न रोऊँ।

हो दरिद्रता पर न दीनता
पास फटकने पावे
हो कुबेर वैभव पर, मेरा
मनमें गर्व न आवे।

गुरुपद और शारदा जैसा दिव्य-कुञ्ज हो मेरा
तो विरक्त हो समझूँ दुनिया चिड़िया रैन-बसेरा।

रहूँ निरन्तर किन्तु निरन्तर
मौन सदा हो मेरा
समताके अथाह वारिधिमें
डूबे 'तेरा' 'मेरा'।

राग-रंगसे हृत्-पट मेरा रंजित भले बना हो
पर, उसपर हो राग एक-सा धोखा भी न बना हो।

बाबू अयोध्याप्रसाद गोयलीय

जैन समाजमें बहुत थोड़े लोग ऐसे हैं जो बा० अयोध्याप्रसादजी गोयलीयको पहलेसे ही प्रत्यक्ष या परोक्ष रूपमें न जानते हों।

गोयलीयजी आज २० वर्षसे जैन-समाज और जैन-साहित्यकी गतिविधिमें सक्रिय भाग ले रहे हैं। उनके सीनेकी आग आज भी उसी तरह गरम है। समाज, देश, धर्म और साहित्यसेवाकी दीवानगी आज भी २० वर्ष पहलेकी तरह बदस्तूर क़ायम है।

अपनी सहज कुशाग्र-बुद्धि, अध्यवसाय और अनुशीलनके द्वारा उन्होंने न्याय, धर्मशास्त्र, इतिहास, हिन्दी, उर्दू और संस्कृत साहित्यमें अच्छी गति प्राप्त की है। कथा, कहानी, कविता, नाटक, निबन्ध और प्रचारात्मक साहित्यके वे स्रष्टा हैं। 'दास' उपनामसे लिखी हुई उनकी हिन्दी और उर्दूकी कविताओंका संग्रह प्रकाशित हो चुका है। और जैन इतिहास, विशेषकर मौर्यकालीन इतिहासके तो वे प्रामाणिक विद्वान् हैं। उर्दू शायरीसे इन्हें ख़ास दिलचस्पी है।

सामाजिक जागृतिके क्षेत्रमें उन्होंने कार्यकर्ताओंको जोशीले गाने और उत्साहप्रद कविताएँ तथा युवकोंकी भावनाओंको सिंहनादका स्वर दिया। उनकी एक जोशीली कविताके चन्द शेर मुलाहजा हों।

प्रथम जातिमें ही करें निज आचार प्रचारको
द्वितीय जातिमें दें पूजा वीणाकी झंकारको।
लाख बुरे हैं पर अच्छे हैं अपने ही हैं
इन भावोंके बिना सफलता सपने ही हैं
उनके प्रकटित भाव धोपपर तपते ही हैं
अभिमत मिलता नहीं न चिन्ता अपने ही हैं।
जब तक यो जातीयताका न चढ़ेगा रंग खूब
हो न सकेगा तब तलक विजय विश्वका सुदृढ़ मत।

धर्म-तत्त्व

कहीं राम मन्दिर कहलाता कहीं विराजे हैं भगवान
क्या करीमके मसकनको मसजिद न मानती है कुरआन ?
अन्य मान्य हैं मनमें मन्दिर, जिसमें है मसजिद प्यारी
प्रकृति देवीने पुष्प-भावनासे की जिसकी तैयारी।
नरने चूना गारा पत्थरसे खूब भवन बनाये हैं
भव्य भावनाकी प्रकृति देकर भगवान बुलाये हैं।
नर-निर्मित मन्दिर मस्जिद स्मृतियाँ हैं मन मन्दिरकी
बाह्य क्रिया है साधन वीणा गूँज उठे अभ्यन्तरकी।
पण्डित-मुल्ले भोली-भाली जनताको बहकाते हैं
नर-नारायण मन्दिर-मसजिदके मिस प्राण गँवाते हैं।
अमित अनलसे बढ़कर दावानल बनती है दूषण है
क्षमा क्षमाशीलोंका गुण है धर्म मर्म है मथन है।
बीमारीकी तहमें व्यापी बहुमतकी बीमारी है
मतविधर्मीका मत प्रचार है भले भलोंकी ख्वारी है।

बाबू अजितप्रसाद, एम० ए०, एल-एल० बी०

बाबू अजितप्रसादजीका जन्म सन् १८७४में हुआ। आपने सन् १८६५में एम० ए०, एल-एल० बी०की उपाधि प्राप्त करके वकालत प्रारम्भ की थी। आप कई वर्षों तक सरकारी वकील और बादमें बीकानेर हाईकोर्टके जज रह चुके हैं।

आप स्याद्वादमहाविद्यालय, ऋषभ ब्रह्मचर्याश्रम, सुमेरचन्द जैन होस्टेल, जैनसिद्धान्त-भवन और दिगम्बर जैन-परिषद्के सस्थापनमें उत्साही पदाधिकारीके रूपमें सम्मिलित रहे हैं।

आप सन् १६१२ से अग्रेजी 'जैनगजट'के सम्पादक और सन् १६२६ से 'सेन्ट्रल जैन पब्लिशिंग हाउस,' लखनऊके सञ्चालक हैं, जहाँसे अग्रेजीमें ११ सिद्धान्त ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं।

श्री अजितप्रसादजी कविरूपसे विख्यात नहीं हैं। विशेष अवसरोंपर मित्रोंके अनुरोधसे, खासकर उर्दूमें, कुछ लिख देते हैं। लेकिन जो कुछ लिखते हैं उसमें कुछ पद-लालित्य और विशेष अर्थ गम्भीरता होती है। आपने प्राय सेहरे लिखे हैं।

उनकी उर्दू-हिन्दी मिश्रित एक धार्मिक रचनाके कुछ अश यहाँ दिये जा रहे हैं। दूसरी कविता 'यह बहार' उर्दू-शैलीकी सुन्दर रचना है, जो एक सेहरेका अश है।

हम वो हैं मर्द कि मैदान न छोड़ेंगे कभी ।
मुँहसे जो कह चुके मुँह उससे न मोड़ेंगे कभी ॥
तीरसे तेगसे खंजरसे कहीं डरते हैं ?
अज़्म[1] जिस बातका कर लेते हैं वोह करते हैं ॥
आज जो हमसे खिंचा सा है वोह कल कम होंगे ।
जब कमर बांधके उट्ठेंगे हम ही हम होंगे ॥
नेक और बदमें है क्या फ़र्क़ बतानेवाले ।
जो हैं गुमराह[2] उन्हें राह पै लानेवाले ॥
बेखबर जो थे उन्हें हमने खबरदार किया ।
ख्वाबे गफ़लत[3] से हरएक शख्सको हुश्यार किया ॥
यह तो माने है मगर बच्चे ममसे[4] बच जाए ।
घरसे बाहर न कोई आए न मुँह दिखलाए ॥
शौक़से बेत[5] की मानिन्द भरम बरसाए ।
कामकी जिससे कही चोट मे बच्चो पै जाए ॥
कामसे थके हैं मजहबसे मोहब्बत हमको ।
क्या करें ? कामसे मिलती नहीं फ़ुरसत हमको ॥
कौम क्या कहते है ? मुतलक़ उन्हें अहसास[6] नहीं ।
धामक धर्म दयाका भी ज़रा पास नहीं ॥
जिससे तस्वीरकी शोभा बढ़े वोह रंग भरो ।
दिलमें गैरत है अगर 'दास' तो प्रकाश करो ॥

प्रण । भूला भटका । स्वप्न । काम करनेका समय ।
बैंत । कूच । लगाम ।

बाबू अजितप्रसाद, एम० ए०, एल-एल० बी०

बाबू अजितप्रसादजीका जन्म सन् १८७४में हुआ। आपने सन् १८९५में एम० ए०, एल-एल० बी०की उपाधि प्राप्त करके वकालत प्रारम्भ की थी। आप कई वर्षों तक सरकारी वकील और बादमें बीकानेर हाईकोर्टके जज रह चुके हैं।

आप स्याद्वादमहाविद्यालय, ऋषभ ब्रह्मचर्याश्रम, सुमेरचन्द जैन होस्टेल, जैनसिद्धान्त-भवन और दिगम्बर जैन-परिषद्के संस्थापनमें उत्साही पदाधिकारीके रूपमें सम्मिलित रहे हैं।

आप सन् १९१२ से अंग्रेजी 'जैनगजट'के सम्पादक और सन् १९२६ से 'सेन्ट्रल जैन पब्लिशिंग हाउस,' लखनऊके सञ्चालक हैं, जहाँसे अंग्रेजीमें ११ सिद्धान्त ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं।

श्री अजितप्रसादजी कविरूपसे विख्यात नहीं हैं। विशेष अवसरोंपर मित्रोंके अनुरोधसे, खासकर उर्दूमें, कुछ लिख देते हैं। लेकिन जो कुछ लिखते हैं उसमें कुछ पद-लालित्य और विशेष अर्थ गम्भीरता होती है। आपने प्राय सेहरे लिखे हैं।

उनकी उर्दू-हिन्दी मिश्रित एक धार्मिक रचनाके कुछ अंश यहाँ दिये जा रहे हैं। दूसरी कविता 'यह बहार' उर्दू-शैलीकी सुन्दर रचना है, जो एक सेहरेका अंश है।

धर्मका मर्म

(इस कविताकी मधुर धुनि भजनपर है)

भगवन ! मुझे रास्ता बता दे
क्योंकि दुख जानकी रिझा दे
चिरकालसे दुखियार हूँ पड़ा—
जल्दी दुखसे यह छुड़ा दे।
कर्मोंने किया खराब-खस्ता
चरणोंमें पड़ा हूँ दस्तबस्ता
बेसुध मैं खुदीमें खो रहा हूँ
परमात्मा हूँ मैं सो रहा हूँ।
इस जीवकी प्राप्ति तो नहीं है
पर भ्रम है इसका यह सही है
पत्थरमें छिपी है आत्म-ज्योति
पाषाणसे अग्नि पैदा होती।
फूलोंमें खिली है आत्म ज्योति
वृक्षोंमें फली है आत्म ज्योति
अज्ञानका बस पड़ा है ताला
ज्ञानीने है उसे तोड़ डाला।
चारित्रसे रास्ता सुगम है
चलना न बहुत है बल्कि कम है
आगमने जो मुझको सिखाया
है मैंने यहाँ वह सब सुनाया।
गुरुदेवसे जो मिला है परसाद
देता है यही 'अजित परसाद'।

यह बहार

[सेहरेका एक अंश]

फस्ल-ए-बहार आती है हर साल नित नई ।
दिखलाती है बहार वह हर साल नित नई ॥
पर अबकी सालकी तो अनोखी ही शान है ।
देखी कभी न पहले वह अब आन बान है ॥
जाडेने खूब लुत्फ दिखाया था ठडका ।
अकडा था ऐसा न था ठिकाना घमण्डका ॥
सप्रेजा किटकिटा रहा बत थर थरा रहा ।
पारा सुकडके तीससे नीचे था आ रहा ॥
अगारा राखमें था मुँह अपना छिपा रहा ।
चेहरे पै आफतावके परदा-सा छा रहा ॥
आते ही बस बसन्तके नक्शा बदल गया ।
बस अन्त जाडेका हुआ उसका अमल गया ॥
आँखोमें सबकी रग समाया बसन्तका ।
साफा बसन्ती और दुपट्टा बसन्तका ॥

× × ×

दूल्हा दुल्हनकी जोडी विधाताने जोडी है ।
दोनो है बे-मिसाल क्या यह बात थोडी है ॥
जब तक जमीं फलक रहे जोडी बनी रहे ।
बन्ने बनीमें खूब मोहब्बत बनी रहे ॥

(एक विवाहोत्सवपर पठित)

श्री कामताप्रसाद जैन

श्री कामताप्रसादजीका जन्म सन् १९ १ में सीमाप्रान्तके प्रमुख नगर कैम्पबेलपुर (पाकस्तान) में हुआ था। आपके पिता श्री ला० प्रागदासजी वहाँ सरकारी फौजमें खजांची थे। वैसे यह अलीगंज जिला एटाके रहनेवाले हैं। यद्यपि आपका बाल्यजीवन फैजाबाद मेरठ और हैदराबाद सिंधमें बीता और आपका अध्ययन मैट्रिक तक ही हो सका परन्तु आपमें ज्ञानपिपासा और धर्म-जिज्ञासा जन्मजात है जिसके कारण आपका ज्ञान और अनुभव उल्लेखनीय है। आप जैन इतिहास और तुलनात्मक-धर्मके प्रामाणिक विद्वान् और सुलेखक हैं। आपकी विद्यापटुता और बहु-श्रुत-ज्ञान को लक्ष्य करके "जैन एकेडेमी ऑफ विज़डम ऐंड कल्चर" करांचीने "डॉक्टर ऑफ लॉ" की सम्मानजनक उपाधिसे आपको अलंकृत किया था। आपका साहित्यिक जीवन स्व० श्री ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजीकी प्रेरणाका सुफल है। आपने 'भगवान महावीर' नामक पुस्तककी रचनासे प्रारम्भ करके अब तक लगभग १०-४ पुस्तकें लिखी हैं। हिन्दी और अंग्रेजीके सामयिक-साहित्य-सिरजनमें भी आप सतत उद्योगी रहते हैं। आपने "जैन इतिहास" को पाँच भागोंमें लिखा है जिसमें ९ भाग "संक्षिप्त जैन इतिहास" के नामसे 'श्री दि० जैन पुस्तकालय' सूरत द्वारा प्रकाशित हो चुके हैं। अभी हालमें आपका 'हिन्दी जैन साहित्यका इतिहास' नामक वृहद् निबन्ध 'श्री भारतीय विद्याभवन' बम्बई द्वारा चालित अखिल भारतीय सांस्कृतिक निबन्ध प्रतियोगितामें पुरस्कृत हो चुका है—उसपर आपको रजतपदक प्राप्त हुआ है। यह सुन्दर रचना भारतीय ज्ञानपीठ द्वारा प्रकाशित हो रही है। 'भ० महावीरकी शिक्षाएँ' नामक निबन्धपर आपको "यशोविजय ग्रन्थमाला भावनगर" से सुवर्णपदक प्राप्त हो चुका है।

आपकी अन्य रचनाएँ भी पुरस्कृत हुई है। आपकी एक विशेषता रही है कि साहित्यरचना करना आपके निकट एक धर्म-कृत्य मात्र रहा है। आपकी पुस्तकोका अनुवाद गुजराती, मराठी और कनडी भाषाओमें हो चुका है। अंग्रेजीमें भी आपने दो-तीन पुस्तकें लिखी है। आप "जैन सिद्धान्त-भास्कर"के सम्पादक है और भा० दि० जैन-परिषद्के मुख पत्र 'वीर'का तो उसके जन्मकालसे ही सम्पादन कर रहे है। आपका रा समय सार्वजनिक कार्योमें ही प्राय बीतता है। अलीगजमें आप राजमान्य ऑनरेरी मैजिस्ट्रेट और असिस्टेंट कलक्टर भी है। अनेक सभा-समितियोंके सभासद और मन्त्री भी है।

श्री कामताप्रसादजी 'कवि'की अपेक्षा कविताको प्रेरणा देनेवाले साहित्यिक अधिक है। आपने 'वीर' द्वारा अनेक लेखकों और कवियोको प्रोत्साहन दिया है। आपने कवितावद्ध कम्पिला तीर्थकी पूजा और जैनकथाएँ भी लिखी हैं। इन्होंने 'बृहद् स्वयंभूस्तोत्र'का पद्यानुवाद किया है।

वीर प्रोत्साहन

अब उठो उठो हे तरुण वीर
कर दो जगको तुम मगन वीर !

यह देखो नव ऋतुराज साज नव तरु विकसित पल्लव पराग
जीवन-जागृति-ज्योती-अपार, चमके अब चमके द्वार द्वार !

अब जागो जागो तुम वीर धीर !

प्राची विलके तुम तेज राशि भर दो जगमें तुम नव प्रकाश
कर दो दुख शर्वरका विनाश बिरके ज्यों घट-घटमें हुलास।

अब बढो बढो साहस गँभीर !

हे वीर भूमिकी सुसन्तान हे चन्द्रगुप्त-पौरुष-निधान
राणा प्रतापकी प्रमुख शान बन जाओ अब तुम विश्व-त्राण।

अब हरो हरो दुख दर्द पीर !

कर दृढ असि गहकर करण वार निर्भय युद्ध कर धमाधार
धा गया शत्रु, अब देख द्वार, प्रलयंकर बन कर बार-बार।

अब चलो चलो तुम रण सुधीर
अब उठो- उठो हे तरुण वीर।

जीवनकी झांकी

जीवनकी है अकथ कहानी ,
है किन देखी, है किन जानी ?

मधुर-मधुर अर विषम-विषम-सी
सरस - विरस अरु सुखद-दुखद भी ,
सित-तम-पक्ष विलोके ना जी ,
निरखे नित ही वह मनमानी ,

किन यह जानी प्रकृति निशानी ?
किन यह जानी, किन यह मानी ??

नभमें तारा झिलमिल चमके ,
चातक चन्द्र चाँदनी मोहे ,
रवि शिशु उषा-अकमें सोहे ,
गगकी धार वहे नित पानी ।

किन यह ध्रुवलीला पहिचानी ?
किन है जानी, किन है मानी ??

जल-बुद-बुद-सम विभव प्याली ,
क्यो पीवे तू यह मतवाली ?
सुध न रहे बुध पिय विसरावे !
विरह विषय चहुँ गति अकुलानी ! !

भिन्न यह ज्ञानी । भेद विज्ञानी ।
भिन्न है ठानी भिन्न है मानी ?

रवि-रस-रत रसना मतवाली
मधुपूम पयी तृषा न थमी री
घम प्रहार छूटी यह सारी
कैसे रह गया चिद् विज्ञानी !

भिन्न यह भेद-दशा पहिचानी ?
भिन्न यह ज्ञानी भिन्न यह मानी ??

दृग-ज्ञान-चरण समता भर ले !
नीर-विजय-बल ममता हर ले ।।
चतुर विवेकी नर ले ज्ञानी !
भिन्न यह देही भिन्न यह ज्ञानी ।।

उन सम नहिं है और विज्ञानी !
उनमें ज्ञानी उनमें मानी ।।

जीवनकी है अकथ कहानी !

पंडित परमेष्ठीदास 'न्यायतीर्थ'

आप जैन-समाजके युवक-हृदय गम्भीर विद्वानोंमेंसे हैं। आपने जैन-दर्शन और जैन-साहित्यके मननके साथ-साथ हिन्दी भाषाके प्राचीन और अर्वाचीन साहित्यका अच्छा अध्ययन किया है। आपकी प्रतिभा समालोचनाके क्षेत्रमें विशेष रूपसे सजग और सफल है। आपने जैन-शास्त्रोंका मौलिक दृष्टिकोणसे अध्ययन किया है, और निर्भीकतासे उसका प्रतिपादन किया है। इनके विचार उग्र हैं, और जीवन सदा कर्तव्य-रत। समाज-सुधार और देशोन्नतिके लिए आप और आपकी धर्मपत्नी सौ० कमलादेवी 'राष्ट्रभाषा-कोविद', जो हिन्दीकी सुकवियित्री भी हैं, अपना जीवन अर्पण किये हुए हैं। यह दम्पति स्वदेश-आन्दोलनमें जेल-यात्रा कर आया है।

आपकी लिखी हुई पुस्तकों—'विजातीय विवाह मीमांसा', 'सुधर्म-श्रावकाचार समीक्षा', 'दान-विचार समीक्षा' और 'जैनधर्मकी उदारता', आदि—ने अनेक विषयोंपर मौलिक प्रकाश डालकर समाजके विद्वानोंको नये चिन्तन और मननकी सामग्री दी है। आप जैनधर्मको ऐसे व्यापक रूपमें देखते हैं और उसे युक्ति तथा आगमसे इस प्रकार प्रमाणित करते हैं कि उसका भगवान् महावीर द्वारा मानव-धर्मके रूपमें प्रतिपादन या प्रतिष्ठापन स्वत सिद्ध प्रतीत होने लगता है।

आपका एक कविता-सग्रह 'परमेष्ठी-पद्यावलि' नामसे छपा है। आपकी रचनाएँ जनता और वर्गमें धार्मिक भावनाएँ और सामाजिक सुधार प्रोत्साहित करनेके लिए अच्छा साधन बनी हैं। साहित्यिक मूल्यकी अपेक्षा उनका सामाजिक मूल्य अधिक है।

महावीर सन्देश

धर्म वही जो सब जीवोंको भवसे पार लगाता हो
कलह द्वेष मात्सर्य भावको कोसों दूर भगाता हो।

जो सबको स्वतन्त्र होनेका सच्चा मार्ग बताता हो
जिसका आश्रय लेकर प्राणी सुख समृद्धिको पाता हो।

जहाँ धर्मसे सदाचारपर अधिक दिया जाता हो जोर
टर जाते हों जिसके कारण अमपाशविक अघन घोर।

जहाँ जातिका गर्व न होवे और न हो थोथा अभिमान
वही धर्म है मनुज मात्रका हो जिसमें अधिकार समान।

नर नारी पशु पक्षीका हित जिसमें सोचा जाता हो
दीन हीन पतितोंको भी जो हर्ष सहित अपनाता हो।

ऐसे व्यापक जैन धर्मसे परिचित हो सारा संसार
धर्म अशुद्ध नहीं होता है खुला रहे यदि इसका द्वार।

धर्म पतित पावन है अपना नित्य जिन ऐसा गाते हो
किन्तु बड़ा आश्चर्य आप फिर क्यों इतना सकुचाते हो।

प्रेम भाव जगमें फैला दो करो सत्यका नित व्यवहार
दुरभिमानको त्याग अहिंसक बनो यही जीवनका सार।

मन उदार बन त्याग धर्म फैला दो अपना देश विदेश
'दास' इसे तुम भूल न जाना है यह महावीर-सन्देश।

प्रगति प्रेरक

श्री कल्याणकुमार 'शशि'

कविताके नये युगमें जिन कवि-हृदयोंने समाजमें प्रगतिको प्रेरणा दी, उनमें युवक कवि श्री कल्याणकुमारजी 'शशि' निःसन्देह प्रधान है। आज लगभग १५ वर्षसे 'शशि'जी काव्य-साधना कर रहे हैं, और उनकी प्रतिभा उत्तरोत्तर विकासकी ओर उन्मुख है। उन्हें आप कोई-सा विषय दे दीजिए, वह अपनी भावुक कल्पना-द्वारा सहज काव्य-सृष्टि करके उस विषयको चमका देंगे। कविका कार्य समाजके जीवनमें प्रवेश करके उसको साथ लेकर, उसे आगे बढ़ाना होता है। 'शशि'ने उत्सवोंके लिए धार्मिक पद रचे, झंडेके लिए गीत बनाये, महापुरुषोंकी जीवनियोंपर भावपूर्ण कविताएँ लिखीं और समाजके नये भावोंको नई वाणी दी।

अब वह कई पग आगे बढ़ गये हैं। आज उनके गीतोंमें विश्वका आकुल अन्तर बोल रहा है। वह कल्पनाको उत्तेजित कर, अलङ्कारकी सृष्टि नहीं करते, आज तो उनका हृदय वर्त्तमानको देखकर ही भावाकुल हो उठता है। वह अपनी नैसर्गिक प्रतिभाके बलपर भावोंको गीत-बद्ध कर देते हैं। हाँ, वह भाषाका लालित्य और भावोंकी सुकुमारता जागरणके वज्रघोषी गीतमें भी क़ायम रख सकते हैं।

जब हमने 'शशि'से प्रामाणिक परिचय माँगा, तो लिख भेजा—

"मेरा परिचय कुछ नहीं है। मार्च १९१२ का जन्म है। व्यापार करता हूँ—ग़रीब आदमी हूँ, बस यही!"

यह 'ग़रीब आदमी' कविताके जगत्में आज सारी समृद्ध जैन-समाजकी निधि है।

श्री कल्याणकुमार 'शशि'ने जैन-महिलाओंकी कविताओंका सुन्दर सग्रह 'पखुरियाँ' नामसे प्रकाशित किया है। आपकी अनेक स्फुट रचनाएँ पुस्तकाकार छप चुकी हैं। आप रामपुर (रियासत)में व्यापार-कार्य करते हैं।

एकपदी

आओ बनकर आज आग
हे कवि-भावी क्रुद्ध आओ !

अग्नि-पुञ्जमें हा धू-धूकर मानव जलता
छाई रोम-रोममें दुनियाके व्याकुलता
बढ़ा था रहा बुद्धिवाद मानवको छलता
बहुत हुआ अब यह भीषण-नट
परिवर्तन कर जाओ।

नाच रही है जम्बूद्वीप रक्तिम रण-चंडी
लाल रक्तसे लथपथ बन उपवन पथ-डंडी
बीहड़में अपमेनु पड़ा खूब धुआं घमंडी
मानवताका पर्व चूरकर
इसमें मानव आओ।

केवल मेरी सत्ताकी माया मरीचिका
जगा रही है पग-पगपर भीषण विभीषिका
प्यासा यह नर-पशु बनकर रक्त-पीशिका
इसे रक्तकी जगह प्रेमका
पुण्य-पियूष पिलाओ।

विस्रुत जीवन

नई लहरने बदल दिया है
मेरा सञ्चित जीवन,
नए रूपमें नए रंगमें
हुआ पल्लवित मधुवन,

अभिमण्डित हो उठा आज
विश्रुत जीवनका कण-कण,
यह असिद्ध है, किस भविष्यपर
दौड़ रहा यह क्षण-क्षण।

उर कहता है, कुछ खोया है
मन कहता है पाया,
उद्वेलित कर रही नित्य यह
उभय पक्षकी माया।

विश्व और, मैं और हुआ
क्या देख रहा हूँ सपना?
अह, यह लो निमेषमें ही
सब बदल गया जग अपना।

गीत

नव गीत मधुर, नव गीत मधुर !
हे हे कवि तेरी मदिर तान
झंकृत वीणाकी ध्वनि विशाल
में घुलकर प्राण हुआ निहाल
हाँ हाँ फिर गा दे एक बार
वह गीत मधुर !

सम्मिलित जगतका उदय अस्त
तेरी वह मादक ध्वनि प्रशस्त
मेरा संगम जग अस्त-व्यस्त
बनकर स्वर लहरी मचल उठे
फिर वह आतुर !

हो पुन तरंगित गीत रम्य
अपवाद आज फिर हो अगम्य
हो भग्न रहित वह तारतम्य
बीहड़में कूद लहलहा उठे
नव प्रेमांकुर !

ले मिला मिलाया सकल साज
फिर लहरी गूँजे पुन आज
निर्जीव बना हो स्वरराज
हो आलोकित मेरा निशान्त
नव अन्तपुर !

गायन-सी हो गुंजायमान ,
छा जाये नभपर बन अम्लान ,
थिरके चंचल हो सुप्त प्राण ,
गत वर्तमान जोड़े भविष्यको
बन लय - सुर !

अह, छेड़ रहा है मुझे कौन !
लय भंग हो गया यदपि, तो न
मुखरित होगा मन्दायु मौन ,
रे, अभी भविष्यत् और शेष है
बन न निठुर !

बस, बन्द करो अस्थिर निनाद ,
ले लो तुम यह चिर आह्लाद ,
मैं लूंगा मादकता प्रसाद ,
मैं अमर हुआ, गत हुआ
नाद यह क्षण-भंगुर !

जो सरस प्रेमसे रहा सींच ,
उसको मेरे करसे न खींच ,
अवलोक रहा हूँ नेत्र मीच ,
मैं अन्तर्हित हूँ दृश्यमान
छवि म्लान मुकुर !

हाँ अब चमका मेरे समीप
वह प्राणमयी निर्वाण दीप
मैं हुआ अमर जगका महीप
अब दुख न छुएगा पाप भयंकर
ओ सुकवि चतुर !

शत शत ज्वालाग्नियोंका श्मशान
हो उठा आज फिर मूर्तिमान
छूट चला विश्वमें प्रेम बाण
सम बोध हुआ गत भेद हुए
किन्नर, नर, सुर !

श्री भगवत् स्वरूप 'भगवत्'

साहित्यके आकाशमें इस नक्षत्रका उदय अभी कुछ वर्ष पहले ही हुआ है; पर आते ही इसने जनताकी दृष्टि अपनी ओर खींच ली, क्योंकि इस नक्षत्रमें अनुपम प्रकाश है, ज्वाला है और साथ ही है एक अपूर्व स्निग्धता।

'भगवत्' जी कवि हैं, कहानी-लेखक हैं और नाटककार हैं—खूबी यह कि जो कुछ लिखते हैं प्राय बहुत ही सुन्दर होता है। आपकी कविता नितान्त आधुनिक ढगकी है—वह युगसे उत्पन्न हुई है और युगको प्रतिध्वनित करती है। वर्त्तमान मानव-समाजका ढांचा जिन आर्थिक और सामाजिक सिद्धान्तोंपर खडा हुआ है, वह जन-समूहके लिए निरन्तर सकट और सघर्षकी वस्तु बने हुए हैं। आपका कवि सघर्षसे जूझ रहा है। 'भगवत्' अपनी कवितामें उसी सघर्षका प्रतिनिधित्व करके हमारी सामाजिक चेतना-धाराको विश्व-व्यापी मानव-चेतनाकी महाधारासे जोड़नेका प्रयत्न कर रहे हैं। वह कहते हैं —

> "कर्मक्षेत्रमें उतर रहा हूँ, लेकर यह अभिलाषा,
> समझ सके संगठन शक्तिकी, जनता अब परिभाषा।"

आपकी भाषा बहुत ही स्वाभाविक होती है। नाटकोंमें आप विशेष रूपसे ऐसी भाषाका प्रयोग करते हैं जो आम लोगोंकी समझमें आ जाये।

अब तक आपकी निम्नलिखित रचनाएं प्रकाशित हो चुकी हैं—

उस दिन, मानवी (कहानियां), संन्यासी (नाटक), चांदनी

(कविता-संग्रह) समाजकी आग (नाटक) घूँघट (प्रहसन) बरवाली (व्यङ्ग काव्य) भाग्य (नाटक) रसभरी (कहानियाँ) मानवतेज (स्वामी समन्तभद्र) विपत्तामन्तन जय महावीर, कल-कल अभवार, उपवन—अन्तिम पाँचों गीत हैं।

आप ऐतमादपुर (आगरा)के रहनेवाले थे; और सन् १९२४–२५से लिख रहे थे।

खेद है कि 'भगवत्‌जी' अपने पीछे अपनी विधवा पत्नी और तीन पुत्रियोंको बिलखती छोड़कर ६ सितम्बर सन् १९४४को दिवंगत हो गये।

आपकी अब तक १९ पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं।

आत्म-प्रश्न

मैं हूँ कौन, कहाँसे आया ?
महाशोक है, मानव कहलाकर भी इतना जान न पाया ।
स्वर्ण छोड़ पीतलपर रीझा ,
सुधा त्याग पी लिया हलाहल ,
चला वासनाओंके पथपर ,
इतना रे, भरमा अन्तस्तल ।
सच्चे सुखका स्वप्न न देखा, दुखपर रहा सदा ललचाया ।
अपने भले-बुरेकी मैंने ,
समालोचना भी कबकी है ?
आत्मिक निर्बलता भी मुझको ,
नहीं कभी मनमें अखरी है ।
'जीवन' भूला रहा, मृत्युको अविवेकी होकर अपनाया ।
काश, टूट जाता भीतरसे ,
मोह और मायाका नाता ,
तो अपने सुख-दुखका मैं था ,
उत्तर-दाता भाग्य-विधाता ।
किन्तु गुलामीने है मुझको ऐसा गहरा नशा पिलाया ।
एक-एक कर चले जा रहे ,
दिन जीवनको हँसा रुलाकर ,
विघ्न-बादलोंमें लिपटा है ,
इधर मृतक-सा ज्ञान-दिवाकर ।
सूझ न पड़ता अन्धकारमें, क्या अपना है कौन पराया ।
मैं हूँ कौन कहाँसे आया ?

मुझे न कविता लिखना आता

मुझे न कविता लिखना आता,
जो कुछ भी लिखता हूँ उससे केवल अपना मन बहलाता।
मुझे न कविता लिखना आता॥

कवि होनेके लिए चाहिए जीवनमें कुछ लापरवाही,
घनी हो रही मेरे उरमें चिन्ताओंकी काली स्याही,
मुझ जैसे पत्थरसे है फिर क्या कोमल कविताका नाता?
मुझे न कविता लिखना आता॥

प्रखर दृष्टि कविकी होती है प्रकृति उसे प्यारी लगती है,
पाता है आनन्द शून्यमें क्योंकि वहाँ प्रतिभा जगती है,
हाहाकारोंका मैं बन्दी क्षण-भरको भी चैन न पाता।
मुझे न कविता लिखना आता॥

धुंधले दीपकके प्रकाशमें लिखी गई मेरी कविताएं,
क्या प्रकाश देंगी जनताको इसको जरा ध्यानमें लायें,
मैं इन सबको सोच-सोचकर मनमें हूँ निराश हो जाता।
मुझे न कविता लिखना आता॥

कविता क्या है अब तक मैंने इसे न अपने गले उतारा,
विमुख दिशाकी ओर बह रही है मेरे जीवनकी धारा,
किन्तु प्रेम कुछ कवितासे है अत उसे जीवनमें लाता।
मुझे न कविता लिखना आता॥

एक प्रश्न

क्यों दुनिया तुमसे डरती है ?
तुममें ऐसी क्या पीड़ा है जो उसकी दृढ़ता हरती है ?

हैं कौन सगे हैं कौन गैर जिनसे क्या हाथ बटाते हैं
तुममें तो सब अपने ही हैं तुममें पहचाने जाते हैं
'अपने' 'पर'की यह बात सदा दुनियामें ही गले उतरती है
क्यों दुनिया तुमसे डरती है ?

तुममें ऐसा है महामन्त्र जो भर देता है दीवानापन
सारे विकार सारे विरोध तज प्राणी करता प्रभु-सुमिरन
हर सांस नाम प्रभुका लेती भूले भी नहीं बिसरती है
क्यों दुनिया तुमसे डरती है ?

दुनियाकी सारे बड़े ऐब, दुनियाको नहीं सताते हैं
तुममें डूबे इन्सानोंको बेशक ईमान बनाते हैं
तुम सिखलाती हैं मानवता जो हित दुनियाका करती है
क्यों दुनिया तुमसे डरती है ?

पतझड़के पीछे है बसन्त रजनीके बाद सवेरा है
यह अटल नियम है तमके उपरान्त नवीन बसेरा है
दुख जानेपर सुख आएगा सुख-दुख दोनोंकी बनती है
क्यों दुनिया तुमसे डरती है ?

श्री लक्ष्मीचन्द्र जैन, एम० ए०

आप अंग्रेजी और सस्कृत, दोनों विषयोंके, एम० ए० हैं। इन्हें साहित्यके प्राय सभी युगों और क्षेत्रोंसे परिचय है और सस्कृत, हिन्दी, अंग्रेजी उर्दू और बगला साहित्यके आलोचनात्मक अध्ययनमें विशेष रुचि है।

इनके हिन्दी और इग्लिशके गद्यलेख—भाषा, भाव और शैलीमें—बहुत सुन्दर होते हैं। आप जब देहली और लाहौरमें थे तो ऑल इन्डिया रेडियोसे आपके भाषण, साहित्यिक आलोचनाएँ और कविताएँ प्राय ब्रॉडकास्ट होती रहती थीं।

आपके कवि-जीवनका परिचय श्री कल्याणकुमार 'शशि'के शब्दोंमें इस प्रकार है—

"आप समाजके ही नहीं, वरन् देशके उभरते हुए उज्ज्वल नक्षत्र हैं। आप बहुत ही सरल स्वभावी और मौन प्रकृतिके जीव हैं, और पत्रोंमें नहींके बराबर लिखते हैं। इसीलिए सुदूर वनस्थलीके सुकोमल नीडोंमें गुजरित होती हुई, हृदयको नचा-नचा देनेवाली कोयलकी कूक हमें सुननेको नहीं मिलती। आप अपने विषयके चित्रमें प्रतिभाकी बडी बारीक कूँचीसे रग भरते हैं। आपकी कवितामें 'पन्त' जैसी कोमलताका दिग्दर्शन मिलता है। सम्भवत किसी-किसी कवितामें तो ऐसी अनुभूति होने लगती है कि मानो इन्होंने प्रकृतिकी आत्मासे साक्षात्कार करके ही उसका वर्णन किया हो।"

पहले आप लाहौरमें भारत इन्श्योरेंस कम्पनीके पब्लिसिटी-ऑफिसर और अंग्रेजी पत्र 'भारत मैगजीन'के सम्पादक थे। आजकल आप डालमियानगरमें दानवीर साहू शान्तिप्रसादजीके सैक्रेटरी और डालमिया जैन ट्रस्टके मन्त्रीके पदपर हैं। आपकी धर्मपत्नी श्री कुन्थकुमारी जैन बी० ए०, (ऑनर्स) बी० टी० सुसस्कृत और प्रतिभासम्पन्न आदर्श महिला हैं।

कोई क्या जाने, कोई क्या समझे ?

प्रेमीके प्रीति-भरे मनको
कोई क्या जाने कोई क्या समझे !
भावुक कविके पागलपनको
कोई क्या जाने कोई क्या समझे !
उन्मत्त हृदयकी थिरकनको
मठ-मुखमें मधुर प्रकम्पनको
नयनोंकि मूक निमन्त्रणको
कोई क्या जाने कोई क्या समझे !
अति कुटिल परलमें घूमी हुई
अति सरल सुधासे सींची-सी
मद-भरी मनोकी चितवनको
कोई क्या जाने कोई क्या समझे !
ऐ मौन ज्योतिका एक चुम्बन
औ' उसपर प्राणोंकी बाजी ?
हेरे इस आत्म-विसर्जनको
कोई क्या जाने कोई क्या समझे !
सुख-दुखकी आँख-मिचौनीको
मरकी होनी मनहोनीको
इस स्वप्न-सरीखे जीवनको
कोई क्या जाने कोई क्या समझे !

'कुहू कुहू' फिर कोयल बोली

मन्द समीरणके पंखोंपर,
बैठ, उड़े उसके आतुर स्वर,
विकल हुआ तरु-तरुपर मर्मर,
गजरियाके स्वप्न मधुरतर,
भग हुए, जब शाखा डोली। 'कुहू कुहू०'

उरमें अमिट पिपासा लेकर,
घूम रहा अति आकुल-आतुर,
कली-कलीके द्वार-द्वारपर,
रीते अधरों रोता मधुकर,
गान समझती दुनिया भोली। 'कुहू कुहू०'

छाई कूक अवनि अम्बरपर,
उठी हूक-सी, गरजा सागर,
द्रवित हुए गिरि-पाहनके उर,
निःश्वासोंसे निकले निर्झर,
विकल व्यथाने पलकें खोली। 'कुहू कुहू०'

उरमें किसकी याद छिपाकर,
रोती है तू कर ऊँचा स्वर,
मचल उठा क्यों मेरा अन्तर,
इन आँखोंमें पा नव निर्झर,
तूने उरकी पीड़ा घोली।
'कुहू कुहू' फिर कोयल बोली।

सजनि, आँसू लोगी या हास ?

नील अञ्चलमें छिप चुप-चाप ,
वियोगी तारे तकते राह ,
निराशाका पा अन्तिम ताप ,
बरस जाती आँसू बन 'चाह' !

कलीकी बुझती इससे प्यास
सजनि ! आँसू अच्छे या हास ?

कनक-करसे फैला उल्लास ,
झूमती मलयानिलमें झूल ,
चूमती जब ऊषा सविलास—
मुस्करा उठते सोये फूल !

धरापर छा जाता मधुमास ,
सजनि, कितना मादक है हास !

'मिलन' हँस हँस बिखराता फूल ,
'विदा' रो पोती मोती-माल ,
सुमनमें दोनोंके हैं शूल ,
मुझे दोनोंपर आता प्यार !

भेंट-हित दो ही निधि हैं पास ,
सजनि, आँसू लोगी या हास ?

श्री शान्तिस्वरूप, 'कुसुम'

श्री शान्तिस्वरूप 'कुसुम'को काव्य रचनाके लिए जन्म-जात प्रतिभा मिली है। आपका जन्म १९ अक्तूबर सन् १९२७को बमौरा (मेरठ)में हुआ। आपने हाई स्कूल तक ही शिक्षा प्राप्त की है और आजकल सहारनपुरमें इम्पीरियल बैंकमें खजांची हैं।

आपको हिन्दी साहित्यसे बचपनसे ही अनुराग रहा है और स्वतः स्फूर्तिसे प्रेरित होकर आपने कविता-रचना प्रारम्भ की है। थोड़े ही समयमें आपने इस दिशामें बहुत उन्नति कर ली है और भविष्यमें आप निःसन्देह हिन्दी कवि-समाजमें विशेष गौरव और आदरका स्थान प्राप्त कर सकेंगे।

आपके गीतोंमें उच्च कला तथा सौन्दर्य और भाषिक सरसताके दर्शन होते हैं। इनकी कवितामें प्रवाह होता है जो इस बातका प्रमाण है कि कविता और कविताकी शब्द-योजना हृदयके स्वभावसे उत्पन्न हुई है और वह निर्झरकी तरह स्वाभाविक धाराके रूपमें बह रही है।

'कुसुम'का भावुक हृदय वेदनाके हलके-से आघातसे भी कराह उठता है; पर आप वह निराशावादी नहीं हैं।

भविष्यमें प्रगतिशील जो आन्दोलीय रूप लेता है उसके प्रति कुसुम-जैसे उठते हुए कवि-कलाकारोंका विशेष उत्तरदायित्व है।

हिन्दी साहित्यको श्री शान्तिस्वरूप 'कुसुम'से भविष्यमें बहुत आशाएँ हैं।

कलिकाके प्रति

हो कितनी सुकुमार सलोनी, कलिके, प्रेम सनी-सी,
अन्तरमे रँग भरे अनूठा, जीवन-ज्योति घनी-सी।

इन मादक घडियोंमें अपने यौवनसे सकुचाती,
कुछ-कुछ खिलती-सी जाती हो, अवनत नयन लजाती।

मृदु चितवनसे आकर्षित शत-शत युवकोंने देखा,
मधुर रँगीली-सी आँखोमें, उन्मादक-सी रेखा।

यौवनके स्वर्णिमसे युगमें यह कुकुम-सी काया,
तैर रही जीवन सागरमें बनकर मोहक माया।

पर पङ्खुरियोंके समीपतर इन शूलोंका रहना,
खटक रहा प्रतिपल, सुन्दरि, सचमुच ही तू सच कहना।

इन अलियोंके मोह जालमें तनिक न तुम फँस जाना,
लोलुप मधुके मधुर प्रेमका, केवल, सजनि, बहाना।

इनकी प्रीति क्षणिक है, पगली, सरस देख आ जाते,
रस रहने तक मौज उडाते, नीरस कर उड जाते।

मैं भी कभी कली थी सुन्दर, यो ही मुसकाती थी,
शैशवके मद भरे प्रातमें मञ्जु गीत गाती थी।

आती मलयवायु थी मुझमें, दुख भर-भर जाती थी,
उषा अरुणिमा देती, सन्ध्या, दुख भर ले जाती थी।

तब इन मधुपोंने आ मुझको मधुमय गीत सुनाया,
प्रेम डोरके बन्धनमें कस, अपना जाल बिछाया।

लूटी मधुमय मधुऋतु मेरी सजनी हरण किया है
इस जीवनमें सुखके बदले दुखका मिलन दिया है।

मुझपरसे अब तुमपर या तुमसे या और किसीपर
दो ही पग जायेंगे हँसकर, अपनी मनमानी कर।

निष्ठुर अपनी रीति यही है 'सुखमें साथी' बनना
सुख रहने तक साथ निभाना दुखमें छोड़ बिछुड़ना।

जीवन-दीप बुझाकर तेरा स्वार्थ-भरे ये भौंरे
तुझे बिसराकर झूम उठेंगे सै-सै पवन झकोरे।

वासन्तीकी मधु छायामें सुरभि प्रेमसे झूलो
रस बरसाती रहो निरन्तर, मुक्त पवनमें फूलो।

फूल तुम्हारे जीवन साथी इनसे नेह लगाओ
इन काले-काले भौंरोंको काँटे चुभा उड़ाओ।

कुछ भी न समझ पाता हूँ मैं जगकी या मेरी गलती है!

मैं सुख भोगूँ या दुख भोगूँ दुनिया क्या बाहर जलती है
कुछ भी न समझ पाता हूँ मैं जगकी या मेरी गलती है।

मैं पन्थ पुराना छोड़ चुका मर्यादा बन्धन तोड़ चुका
दुनियासे तो रिश्ता ही क्या अपनोंसे भी मुँह मोड़ चुका।

फिर क्रूर निगाहें रह-रहकर क्यों मेरे साथ मचलती हैं
कुछ भी न समझ पाता हूँ मैं जगकी या मेरी गलती है।

अब एक निराला जीव बना, जीवनमें कहीं न उलझन है ,
मैं हूँ, मदिरा है, साकी है, साक़ीवालाकी रुनझुन है ।

मैं सबसे खुश हूँ दुनियाको, मेरी सत्ता क्यो खलती है ,
कुछ भी न समझ पाता हूँ मैं, जगकी या मेरी ग़लती है ?

दो दिन हीका तो मेला है, फिर जाता पथिक अकेला है ,
यह नश्वर धन दौलत पाकर, रे! कौन न हँस-खुश खेला है ।

यदि मैं भी हँस लूं तो जगकी, दृष्टी क्यो रग बदलती है ,
कुछ भी न समझ पाता हूँ मैं, जगकी या मेरी गलती है ।

मैं प्रेम नगरमें रहता हूँ, सुखके सागरमें बहता हूँ ,
सबकी ही सुनता जाता हूँ, अपनी न किसीसे कहता हूँ ।

तो भी ये दुनियाकी बाते, क्यो रह-रह मुझपर ढलती है ,
कुछ भी न समझ पाता हूँ मैं, जगकी या मेरी ग़लती है ।

कोई कहता तू मार्ग-भ्रष्ट, होकर पाता क्यो अमित कष्ट ,
पापोंसे रँगा हुआ पगले, तेरे जीवनका पृष्ट-पृष्ट ।

मैंने न कभी पथ पूछा फिर, इनकी क्यो जिह्वा चलती है ,
कुछ भी न समझ पाता हूँ मैं, जगकी या मेरी गलती है ।

मैं विद्रोही हूँ, बागी हूँ, अनुराग लिये वैरागी हूँ ,
जिसका न कभी स्वर विकृत हो, मैं ऐसा अद्भुत रागी हूँ ।

फिर मेरे निकले रागोंसे, क्यों दुनिया मुझको छलती है ,
कुछ भी न समझ पाता हू मैं, जगकी या मेरी गलती है ?

श्री हुकुमचन्द्र बुखारिया 'तन्मय'

'तन्मय'की कविताके क्षेत्रमें १९४४ ई०से ही प्रकाश्य रूपमें आए हैं।

आपकी कविताएँ बड़ी ओजपूर्ण तथा विद्रोहपूर्ण होती हैं। कविता-पाठ करते समय आप श्रोताओंको मन्त्र-मुग्ध कर देते हैं। उनकी भावनाएँ छलक उठती हैं।

आप अपने परिचयमें लिखते हैं—'राष्ट्रकी गुलामीकी बात जब कभी मैं सोचता हूँ तो तिलमिला जाता हूँ। पतित अस्पृश्यता और घुटना-तड़पना धरतीके निवासियोंको जब भूखों मरता देखता हूँ तो लेखनी विद्रोहके लिए मचल उठती है और तभी बरबस ही मेरे 'कवि'को जीवित करना पड़ता है—

'आग लिखना जानता हूँ।'

एक स्थानपर आपके कवित्वने भारतसे अर्चना की है—

'युग-चमत्कार युग-मानवका नव-दर्शन मुझको करने दो,
भूखी बलि-वेदीको अपने ! अपमानित शीशोंसे भरने दो
पाताल स्वर्गसे मिल जाए हो धरा-गगनका आलिंगन
विद्रोह खेल खुलकर खेले जिस्मोंकी आग लपटने दो—
इस जगको माँ तुम एक बार हो तो जाने दो क्षार-क्षार।'

'तन्मय'जी प्रलय-गीत लिखनेमें खूब सफल हुए हैं किन्तु प्रलय-गीतोंके साथ आपने कुछ प्रणय-गीत भी लिखे हैं।

वस्तुतः 'तन्मय'जीके कवित्वने कोरी कल्पनाके पंख लगाकर अनन्तके आकाशमें उड़ान नहीं भरी है बल्कि युग जगत्के यथार्थका उसमें

गम्भीरतासे मर्दन किया है और इसी मर्देसे वेगवान् होकर आपकी कवितामें प्रवाहको अनेक धाराओंमें प्रस्फुटित किया है।

आपकी जन्मभूमि ललितपुर (बुन्देलखण्ड) है। ये कांग्रेसी कार्यकर्त्ता हैं और सत्याग्रह-आन्दोलनमें दो बार जेल-यात्रा कर चुके हैं।

आपसे समाज तथा साहित्यको अनेक आशाएँ हैं। इनके निम्नलिखित अप्रकाशित कविता-संग्रह हैं —

१ अङ्गार

२ आधी-रात

३ पाकिस्तान (एक खण्ड काव्य)

आग लिखना जानता हूँ!

१

कोकिलाकी मधुर कू-कू,

सुन रहा कोई निर्झर—झर,

स्वप्नमें लखकर सुमुखिको

भर रहा कोई विरह-स्वर।

किन्तु मैं तो भैरवी अपनी निराली तानता हूँ।

आग लिखना जानता हूँ!

२

व्यर्थ कवि मधु-बिन्दुओंसे
सींच तू अपने सँजोता
बाल-बिरवाकी तरह
नभ-बात छायाभाव रोता !
जो यथावत पूर्ण है—कविता उसे मैं मानता हूँ।
आज सिखना माँगता हूँ !

३

रौद्र मेघशिखर रहा जो
भूलकर जीवन प्रलयको
देख भूखोंको न रोया
क्या कहूँ उस कवि-हृदयको ?
और वह दावा करे—'युग-धर्मको पहचानता हूँ'।
आज सिखना माँगता हूँ !

४

व्यर्थ हैं सङ्गीत-लेखन
हो न जनता का भला जब
यदि न दो रोटी मिले तो
भूल जायें कवि कला सब !
—और रोटीके सिवा—आज मन यह ठानता हूँ।
आज सिखना माँगता हूँ !

मैं एकाकी पथ-भ्रष्ट हुआ

कुछने चौपथ तक साथ दिया,
कुछ अर्द्ध मार्गसे हुए विलग,
कुछ थके, रुके, कुछ कही थमे,
हो उठे सभीके भारी पग।

मैं एक निरन्तर किन्तु बढ़ा,
था आगे इस टेढे पथपर,
पर, हाय, हुआ मुझको भी क्या,
हो रहे चरण मेरे डगमग।

आगे क्या होगा, गति-श्रथ हीं
जब इतना सथक, सकष्ट हुआ?
मैं एकाकी पथ भ्रष्ट हुआ।१।

पथ - भीषणता, दुर्गमताका,
जग आज दिखा मत मुझको भय,
चल पडा रुकूँगा अब न कही,
आँधी आये, हो जाय प्रलय।

पाँवोमे काँटे, चुभें, लहू,
टपके, मुझको चिन्ता न आज,
कर जाऊँगा कालालिगन,
या लौटूँगा ले पूर्ण विजय।

इतिहास बताता कोटिसि
जो उसमें वह उत्कृष्ट हुआ
मैं एकाकी पथ भ्रष्ट हुआ ।२।

मैं पहुँच सकूँगा मंजिल तक
मुझको भय है मैं हूँ हताश
पग-पगपर गिरता उठता हूँ
हो रहा लुप्त रवि शशि-प्रकाश ।

फिर पाँव पकड़कर खींच रहे
पीछे मेरे सहगामी ही
भावुक विविध बन्धन-द्वारा
कर रहे हाय हैं सर्वनाश ।

रे मेरी जीवन-साधना
तो बस आखिरी पृष्ठ हुआ ।
मैं एकाकी पथ भ्रष्ट हुआ ।३।

श्री कपूरचन्द्र, 'इन्दु'

श्री कपूरचन्द्र 'इन्दु' सम्भवत कई वर्ष पहलेसे कविता लिख रहे हैं, किन्तु इधर हालमें ही जो उनकी कविताएँ पत्रोंमें प्रकाशित हुई हैं, उनसे 'इन्दु'जीकी प्रतिभाके विषयमें बहुत अच्छी धारणा बन जाती है।

आपकी कविताओंका केन्द्रवर्ती दार्शनिक भाव अभिनव शब्द-व्यजनाके द्वारा जब व्यक्त होता है तो वह परिचित होते हुए भी अनूठा लगता है। अपने मौलिक भावके लिए यह तदनुकूल शब्द और शब्द-सङ्कलन गढ लेते हैं।

आपकी 'कवि-विमर्श' नामक कविता जो यहाँ दी जाती है वह आपकी शैलीका सुन्दर उदाहरण है। मधु पुराना ही है, किन्तु प्याली एकदम नई और आकर्षक !

कवि-विमर्श

सरावोर प्यालीका तो रस, नही कभी प्रिय छलक सकेगा।

अधजल गगरी छलका करती, पूरण-घट रहता है निश्चल,
चन्द पडे शवनमके कतरे, हरित बना देंगे क्या मरु-थल,
रस छलकानेका न समय है, पडते घीकी भाँति जलेगा,
सरावोर प्यालीका तो रस, नही कभी प्रिय छलक सकेगा।

शाश्वत निधन-हीन रहते क्या सुख-दुख कृत स-सार नही है,
ससारी कर्मोंसे लिपटा, वह बन्धनसे पार नही है,
मुक्त हुए 'मानव' कैसा फिर, सुख-दुखका भागी न रहेगा,
सरावोर प्यालीका तो रस, नही कभी प्रिय छलक सकेगा।

श्री ईश्वरचन्द बी० ए०, एल-एल० बी०

अञ्जलि

आजसे युगो पूर्व
तारो-भरा आंचल उठा
अस्त-व्यस्त सोई-सी
रजनी अलसाई थी ।
प्राची रस-सागर-तट
कुकुम बिखेरती-सी
लज्जासे ओत-प्रोत
ऊषा मुसकाई थी ।
और एक बकिम-भगिमासे
घूंघटको खोल,
विस्फारित नेत्रोंसे झांका वह रस-स्वरूप
आंका वह मोहक रूप
ज्योतिर्मय,
प्रभायुक्त ।
सीमित हो उठा था जिसमें
विश्वका अखिल ज्ञान,
मुनियोका अटल ध्यान,
रूपसिका अचल मान,
लहरोका चचल गान ।
सौम्य मूर्ति,
जिसपर स्वय मुक्ति हो मनुहारमयी
बन्द नयन ।
बन्द जिनमें हो उपेक्षित विश्व

पलकोंपर सोया हुआ
समतामय विराम-भाव
अधरोंपर स्मित-हास्य
सारे बन्धनोंके प्रति
भूला-सा
भटका-सा
राग और विराग-हीन
चेतन अचेतन-सा
विश्व-रूप
विश्व ज्ञान
विश्व दृष्टि
विश्व प्राण !
लक्षित अलक्षित
अपहेलित-सी अलकोंपर
जिसका घूँघर-सा रूप
रह-रहकर डोलता-सा
किरणोंसे खेलता-सा
वायुके झकोरे जैसा
कलिका-पट खोलता-सा
सोया था शान्ति रस।
मीठे-से
हलके-से
सोने और सोने-से
मन्द-मन्द बह रहे
कलियोंका पराग लिये
सौरभ सम्मोहन और
मूर्च्छनामय राग लिये

हलके समीरणके कोमल झकोरोंके
महिमामय क्षणमें
देव !
जैसे सुधाशुपर-से
मेघ हट जाता है ।
जैसे दीप-ज्योतिकी कोमल किरण-बालाएँ
अन्तहीन तमकी तहोंको चीर देती हैं,
वैसे ही, वर्द्धमान,
बुद्धदेव,
केवली,
आत्माके बन्धनोंके
अन्तिम आवरणको चीर
शुद्ध रूप,
शुद्ध ज्ञान,
शुद्ध शौर्य,
शुद्ध वीर्य,
एक महा ज्योति पुंज,
अपनी विराटतामें
अणु-अणु बिखर गया,
निखर गया अखिल विश्व,
दीप्त हुआ भामंडल,
त्रिभुवन हुआ आलोकित,
कोटि-कोटि कंठोंके
जय-जय महाघोष-से
गूँज उठे, लोक, काल,
भूमि ले नभ तक,
नाथ !

समस्त-विश्व-प्राणियोंने
मस्तकको नवाया था
झुकाये थे चरणोंमें
अपने अप्रीड़ित प्राण
नीरव
बेसुध-से हो
सुखके रस-सागरमें
डूबते
उतराते
रोमाञ्चम
रोमाङ्कुर
की थी तब वन्दना
वन्दना—ज्ञानमयी
अर्चना—ध्यानमयी
प्रतिष्ठा—भावमयी
प्रार्थना—प्राणमयी ।
उसकी पुण्य-स्मृतिमें
शत-शत मानवोंके
विह्वल मन-प्राणोंकी
कोमल नवल पङ्खुरियाँ
जो छूनेसे बिखर जायें
ओसकी बुन्दकियोंसे
धोबुली बिखर जायें ।
अर्पित हैं देव आज
पद-रज-परागपर
श्रद्धाकी अञ्जलियाँ ।

श्री लक्ष्मणप्रसाद 'प्रशान्त'

अपने २५ वर्षके साधन-हीन जीवनके द्वन्द्वोंको पारकर, आज
लक्ष्मणप्रसादजी 'प्रशान्त' पीछे मुडकर देखते हैं तो उन्हें सन्तोष होता
इस वातपर, कि अब परिस्थितियाँ वदल गई हैं और जीवनकी वेदन
उन्हें उस कविके दर्शन करा दिये जो उनके हृदयमें इसी दिनके लिए छि
बैठा था। आपने कविता लिखनेके लिए काफी परिश्रम किया है, अ
साधना की है। फिर भी, लगता तो यही है कि उनकी कविताका स्व
सहज और नैसर्गिक है।

इनकी कवितामें ससारकी अस्थिरता और जीवनकी विषमता
हलकी छाप है। पर, कविके कर्तव्यकी ओर भी इनकी दृष्टि है—

"हर दिलमें उमड पडे सागर, हर सागरमें अमृत जागे,
अमृतकी प्यालीमें मानवका एक अमर जीवन जागे।"

फूल

दो दिनकी अस्थिर सुषमापर मत इतराना फूल,
प्रात समय हँसते, मतवाले, साँझ न जाना भूल।
मत करना अभिमान रूपका केवल जग अभिलाषी,
नही सत्य अनुराग, स्वार्थपरता, फिर वही उदासी।
माना वन-वनमें ढूँढ़ा करता तुझको वनमाली,
पर क्या ? स्वार्थ वासनासे मानवका अन्तर खाली ?
सम्हल-सम्हल रहना शिखरोंपर, फिसल न जाना भूल,
पातपात डालीडालीमें निहित नुकीले शूल।
जिसके साथ रहे जीवन-भर खेली आँखमिचौनी,
वही विहग सूनी सध्यामें वने विरागी मौनी।

राही झूठा प्रेम दिखाकर व्यर्थ तुझे अपनाते
चूस-चूस पी अमृत मसलकर, फेंक परे ठुकराते।
हार सुमन कर, बेध हृदय अपने जी-भर तरसाकर
दुनियाने पाई शोभा तेरा संसार मिटाकर।

कविसे

पत्थरमें कोमलता जागे
अंगारोंसे बरसे पानी
निस्तब्ध गगन हो उठे मुखर,
मूकोंकी सुन भैरव बानी।

हो उठे बावली दिशा दिशा
का चीर गहन तममें चमके
हिमकरकी शीतल किरणोंसे
उद्दीप्त तेज धू-धू दमके।

मानवके इंगितपर सत सत
न्यौछावर हो जावें प्राणी
सुन मानवताका सिंहनाद
नतमस्तक हो जावें मानी।

हर दिलमें उमड पड़े सागर,
हर सागरमें अमृत जागे।
अमृतकी प्यालीमें मानवका
एक अमर जीवन जागे॥
कवि गाय मधुर ऐसा गा दे।

अब कैसे निज गीत सुनाऊँ

युग-युगका इतिहास व्यथित

आँसूने निर्मित एक कहानी,

भग्न हृदय भी आज लिये है

अपनेपनकी करुण निशानी।

वृद्ध कण्ठकी स्वरलहरी, तब कैसे जीवन राग सुनाऊँ। अब०

सुख दुखकी दुनियामें—

एकाकी हँसना रोना बाकी है।

उठ-उठकर गिरना गिरकर—

रोना, यह जीवन-झाँकी है॥

देख रहा संसार छलकते दृगसे कैसे अश्रु छिपाऊँ। अब०

कण-कणमें संघर्ष, धधकती—

चारों ओर समरकी ज्वाला।

भूल गया मानव मानवता,

सर्वनाशकी पीकर हाला॥

बन्धु-बन्धुका ही घातक, तब किसको अपना मीत बनाऊँ॥ अब०

भूमण्डल, अम्बर, जल, थलमें,

हाहाकार सब तरफ छाया।

आशान्वित अनन्त जीवनमें,

कौन? प्रलय-सा भरता आया।

अरे, शून्य इङ्गित पथपर मैं अब कैसे निज पैर बढ़ाऊँ॥

अब कैसे निज गीत सुनाऊँ।

श्री राजेन्द्रकुमार, 'कुमरेश'

"एटा जिलामें है बिलराम नाम एक ग्राम
ताहीमें बसत लाला कुंजीलाल बानियाँ
ताके सात सुतनमें दूजो सुत कुमरेश
पढ़िवेकी खातिर विशेष चित ठानियाँ।
थोड़ोसो कियो है याने हिन्दीको अभ्यास कछु
और कछु जाने नाहिं याकी रीतानियाँ
कविता न जाने पर कविनकी संगतिसे
टूटी-फूटी जानत है नित्य ही तुकानियाँ।"

—यह है 'कुमरेश'जीका जीवन-परिचय—उनके अपने शब्दोंमें। आपने आयुर्वेद कॉलेज कानपुरमें आयुर्वेदाचार्य तक अध्ययन किया है। सन् १९१२ से लिखना प्रारम्भ किया है और तबसे निरन्तर जैन-अजैन और हिन्दीके अन्य पत्रोंमें लिखते चले आ रहे हैं।

आपने 'अजना' और 'सम्राट् चन्द्रगुप्त' नामक दो खण्ड-काव्य लिखे हैं जो अभी अप्रकाशित हैं। एक और खण्ड-काव्य आप लिख रहे हैं।

आप नये-पुराने सभी ढंगोंकी कविता आसानीसे लिख सकते हैं। यद्यपि ये छायावादी शैलीको अपनाते हैं फिर भी इनकी एक अपनी ही शैली है। इनकी बड़ी खूबी यह है कि विषयके अनुसार भाषाका चुनाव या चयन प्रयोग करते हैं जो स्वाभाविक प्रतीत होती है।

'कुमरेश'जी प्रधानतः साहित्यिक अभिरुचिके आदमी हैं और इसलिए आशा है आपकी रचनाएँ बढ़ती ही जायगी। आप कहानियाँ भी अच्छी लिखते हैं जो पत्रोंमें प्रकाशित होती रहती हैं।

जागृति-गीत

जाग जीवनके करुण, वह एक अश्रुत राग ।

धुन उठे ध्वनि सुन जगतकी चेतना उर मौन

रह सके बैठी भले स्थिर तालपर यह तो न

कर उठे सहसा थिरकती एक ताण्डवनृत्य

और यह हो जाय तत्क्षण वह प्रलय-सा कृत्य

शाप या वरदान प्रतिक्षण फूंकते हो आग ।

आ भरे उत्साह तनमें और मनमें रोप

टूट जाये आज चिरकी नींद आये होश

देख लें दृग खोल अब क्या-क्या रहा है शेष

शेष क्या है, दैन्य, बन्धन, और दारुण क्लेश

हूक कर ज्वाला मिटा दे यह अमिटसे दाग ।

फूंक दे वह प्राण मृत-सी देहमें अविराम

स्वय इस आरामका मनमें न लेवें नाम

उठे जडतामें निरन्तर भयानक तूफान

और पशुतासे पुरुष पा जाय यह परित्राण

खेल ले निज शम्भु शोणितसे विहँसि हँसि फाग ,

जाग जीवनके करुण वह एक अश्रुत राग ।

परिवर्तनका दास

अथसे लिखा जा रहा प्रतिक्षण है इतिका इतिहास ,

दुखमें झलक रहा है सुखका वह मादक मधुमास ।

लिये चला है विरह मिलनका सुन्दरसा उपहार
यह हासकी देख रहा है उन्मन हाहाकार।

एक भाव लेकर विरागकी बसता है अनुराग
मुग्ध प्रतीक्षामें आशाकी रही निराशा जाग।

नाश गीत गाता विकासके करता है मनुहार
पाप जलाये दीप पुण्यका झाँक रहा है द्वार।

मृत्यु मानिनी-सी करती है जीवनका उपहास
और हास मैं बना हुआ हूँ परिवर्तनका दास।

साकिनसे

मुझ-से हृदयहीन साकीके साकिन बाँध मत राखी
जिसने तुझ दुखिया अबलाकी है न कभी पत राखी।

जो अपने स्वार्थोंपर तेरी नित बलि देता आया
जिसके दिलमें दर्द नहीं है नहीं कसक है बाकी।

तू अपने दुःखोंसे रो-रो हँस-हँस झूम रही है
और इधर यह ढूँढ रहा है सुरा सुराही साकी।

यह निर्मम बेसुध मस्तीसे बना पुरुषसे पशु है
इसे बना सकती न पुरुष फिर तू या तेरी राखी।

भरी चोट नारीकी आभा कसके अम्बर बनी हो
जिसका धुआँ और अभागिनी-सी फिरसे झाँकी।

पन्थी

आशाओंका दीप जलाये पन्थी चला आज किस पथपर ?

पैर बढाये चला जा रहा अपने सरपर रखकर गठरी ,
कहाँ हृदयकी प्यास बुझाने चला छोड़कर है यह नगरी ।

भूल न जाये राह, जा रहा मनमें किसकी दुआ मनाता,
जीमें किस उलझनके सुन्दरसे सुन्दर यह स्वप्न बनाता ।

घरपर बाट देखती होगी बैठी क्या इसकी भी रानी ,
याद इसे भी आती होगी अपनी बीती हुई कहानी ।

किसे सुनाये, किसे बताये, राह अकेली, साथ न प्रियवर ,
आशाओंका दीप जलाये पन्थी चला आज किस पथपर ?

अरमानोमे झूम रही है क्या इसके भी एक दुराशा ,
जिसके कारण अकुलाया-सा बढ़ा जा रहा भूखा प्यासा ?

जीवनकी दुविधाओंने नित इसे कर दिया है क्या उन्मन ,
गूँज रहे कानोमें इसके प्राणोंके क्या शत-शत क्रन्दन ।

बाधाओंने तोड दिया क्या इसका अन्तिम एक सहारा ,
ढूँढ रहा है क्या दुनियाके जानेको उस पार किनारा ।

कौन प्रेरणा लेने देती इसको चैन कहीं न घडी-भर ,
आशाओंका दीप जलाये पन्थी चला आज किस पथपर ?

श्री अमृतलाल, 'चंचल'

कवि और लेखकके रूपमें 'चंचल'जी समाजमें सुपरिचित हैं। विद्यार्थी अवस्थासे ही आपको साहित्यिक लगन है। जब आप ४-५ वर्ष पूर्व हरदा कॉलेजमें पढ़ते थे उसी समय आपने संस्कृतके सुप्रसिद्ध धर्मग्रन्थ 'रत्नकरण्ड श्रावकाचार'का हिन्दी-कवितामें अनुवाद किया था जो प्रकाशित हो चुका है। आपको संस्कृत और हिन्दीका अच्छा ज्ञान है। उर्दू साहित्यसे भी रुचि है।

'चंचल'जीकी रचनाएँ अत्यन्त मधुर होती हैं। आप प्रकृति-वर्णनसे प्राप्त आह्लादकी अभिव्यंजना सरल और स्वाभाविक पदावलि द्वारा करते हैं किन्तु नारीके वर्णनमें भी अपार्थिव तत्त्वकी ओर संकेत करके चलते हैं। आपकी साहित्यिक प्रवृत्तिके मूलमें धार्मिक संस्कृतिकी छाप है।

अमर पिपासा

कहाँ दौड़ रहा मृग जीने अचेत
अरे यहाँ नीरकी आशा नहीं
मरुभूमिकी है मृग-तृष्णिका ये
यहाँ कौन तू प्राणका प्यासा नहीं।

यहाँ लाखों शहीद हुए कवि 'चंचल'
तू भी जिसका ये तमाशा नहीं
यहाँ जिन्दगी ही बुझ जाती है किन्तु
कभी बुझती है पिपासा नहीं।

कहाँ झूम रहा मदमत्त पतग,
अरे, यह आग तमाशा नही !
बन जायेगा खाक अभी, कवि 'चचल',
मोल ले व्यर्थ निराशा नही।

यह चाहकी प्यास है नित्य, सखे,
मिटती कभी यह अभिलापा नही,
यह जिन्दगी ही बुझ जाती है, किन्तु
कभी बुझती है पिपासा नही !

मत चाहकी राहमें आहें भरो,
इस चाहमें लुत्फ जरा-सा नहीं,
इस चाहका जो भी शिकार बना,
वह बना निज प्राणका प्यासा वहीं।

यह चाह यहाँ दुखदाई, सखे,
मिटती इसकी अभिलापा नही,
यह जिन्दगी ही बुझ जाती है, किन्तु,
कभी बुझती है पिपासा नही !

श्री सुभचन्द्र, 'पुष्कल'

आपकी अवस्था अभी २५ वर्षकी है। आप सौंरई (सागर)के रहनेवाले हैं। काव्य-साहित्यसे बचपनसे ही अनुराग है। आप लिखते हैं—

"मुझे कविताकी स्वाभाविक लगन है और यह ध्रुव सत्य है कि कविताके बिना मैं उन्मत्त बना रहता हूँ।"

'पुष्कल'जीने अनेक विषयोंपर अब तक जो कविताएँ लिखी हैं उनकी संख्या काफी है। यह बहुत ही होनहार कवि हैं।

अपनी कवितामें आप वैयक्तिक सुख-दुखकी अनुभूतिका राग नहीं छेड़ते। बाह्य दृश्यों और पदार्थोंको क्षेत्रमें रखकर यह अपने हृदयकी प्रतिक्रियाका प्रदर्शन करते हैं। भाषा भाव और विचारोंका संकलन सरल होता है।

भग्न-मन्दिर

अहा पावनतम पुण्य-प्रदेश अमिट प्रामाणिक इतिहास
प्रकृतिके प्राङ्गणमें ही मौन निरन्तर लिये हुए उल्लास।

चमत्कारोंके हे स्मृति-चिह्न कलाओंके अपूर्व संस्थान
अहो पाया तुमने केवल विश्वमें सर्वोत्तम सम्मान।

किसी मन्दिरमें मानवगण किया करते अनुपम संगीत
गूँजता रहता निर्जनमें निकटवर्ती निर्झरका गीत।

कलाविधि कुशलताके योग्य जिसमें सर्वोत्तम साकार
दिवाकर चन्द्र और तारे रहे निशदिन अनिमेष निहार।

शिखर रमणीक गगनचुम्बी, सर्व गुणसे हो तुम भरपूर ,
देखकर तुम्हें मानियोका मान होता है चकनाचूर ।

कही तुम, निर्मित हो ऐसे, चहूँ दिश निर्जन सूनापन ,
तपस्वी निश्चय हो स्वयमेव, तपस्वीके हो जीवन धन ।

मूर्तियाँ विश्वेश्वरकी रम्य, वेदिका ऊपर निश्चल है ,
भाव अवलोकनसे होते परम पावन अति निर्मल है ।

किसी बीहड वनमे तुम मौन, वने भग्नावशेष, खडहर ,
समय पाकर निर्दय दुष्टा जराने किया जीर्ण जर्जर ।

धराशायी, ओ भग्नावशेष
खडहर, जीर्ण-शीर्ण मन्दिर ,
प्रशसा करता जन समुदाय
तुम्हारे चरणोपर गिर-गिर ।

कवि कैसे कविता करते है ?

कवि, कैसे कविता करते है ?
मैं यही विचारा करता हूँ, ये कवितापर क्यो मरते है ?

जीवन - पथ इनको कटकमय ,
बाधाओमें ध्रुव सत्य विजय ,
दुनियाका सुख-दुख लिखनेको ,
लगता है इनको अल्प समय ।

कविकी उस तुच्छ तूलिकामे मधु-अक्षर कैसे झरते है ?

निर्जनके सूनेपनमें क्यों
चिन्तित रहता इनका जीवन ?
प्रकृतिके प्रतिपलका कैसे
ये करते हैं मञ्जुल चित्रण ?

जिससे निज मनमें फिर कैसे ये कविता-सरिता भरते हैं ?

मृन्मायोंमें जीवन लाना
नवयुवकोंको पथ बतलाना
दीनोंकी करुण कराहोंको
दुनियाको कवितासे गाना।

धन वैभव तन मन अर्पित सिन्धुमें कवितामें क्या भरते हैं ?

मैं चिन्तित-सा रहता निशदिन
यह कविता क्या कैसी होती ?
छोटा सा छन्द बनानेको
मम भावोंकी वीणा रोती।

कविता करना कब आयेगा हम यही विचारा करते हैं !

जीवन-दीपक

जीवन-दीपक जलता प्रतिपल।

प्राण तेल है, दीप देह है,
दोनोंका अनुपम सनेह है,
अज्ञानान्ध स्वरूप गेह है,
उसमें ज्योति जलाता निर्मल।

नव विधि भाव प्रभाका उद्भव,
हो विलीन, क्षण-क्षणमें अभिनव,
कैसा जीवनका यह उत्सव,
नवल दीप जब जलता झिलमिल।

आशाओंकी ज्योति निकलती,
घोर निशाका धुआँ उगलती,
मानवकी यह भीषण गलती,
प्रणयी बन क्यों होता पागल।

आता जभी कालका झोंका,
प्राण-तेल तब देता धोखा,
रुकता नहीं किसीका रोका,
जलते-जलते बुझता तत्पल।

श्री पन्नालाल, 'वसन्त'

आप समाजके मशहूर विद्वानों और साहित्य-सेवियोंमें हैं—साहित्याचार्य न्यायतीर्थ और शास्त्री। आपका जन्म सन् १९११ में पारगुँवा (सागर)में हुआ।

आपने संस्कृतके अनेक धार्मिक ग्रन्थोंकी टीकाएँ लिखी हैं और संस्कृत पद्य और गद्यमें मौलिक रचनाएँ की हैं।

'वसन्त'जी रात-दिन साहित्य-सेवामें निरत हैं। विचार आपके बहुत उदार और राष्ट्रवादी हैं। अनेक विषयोंपर आप सफलतासे लेखनी चलाते हैं किन्तु आपकी प्रायः कविताएँ या तो प्रकृतिको लक्ष्य करके लिखी जाती हैं या वह राष्ट्रवादी होती हैं।

जागो जागो हे युगप्रधान!

जागो-जागो हे युगप्रधान!
है शक्ति निहित सारी तुममें तुमही हो जगके नर महान।

क्षितिपर हरियाली छाई है पर सूख रहे मानव मानस
सरिताएँ वनमें उमड़ रहीं पर खाली है मानस कानन
घनघटा व्योममें उमड़ रही पर भूपर है ज्वाला विशाल
जागो जागो हे युगप्रधान!

नभसे होती है अम्बु-वृष्टि, क्षितिपर सरिताएँ लहराती
जठरोंमें जलती ज्वालाएँ, है नहीं भूखकी हहराती
है दुखद नहीं भाषा उनकी आँखोंमें छाया तम महान
जागो जागो हे युगप्रधान!

कितने ही भाई बिलख रहे, कितनी ही बहनें रोती है,
कितनी माताएँ प्रतिपल अपने शिशुधनको खोती है,
जग भूल गया कर्त्तव्य-कर्म, जिससे माताका सुख निधान,
जागो, जागो हे युगप्रधान !

है रणचण्डीका अतुल नृत्य, दिखलाता जगमें विकट खेल,
है बन्धु-बन्धुमें प्रेम नहीं, है नही किसीके निकट मेल,
ककाल मात्र अवशेष रहा, सब दूर हुआ बल, सौख्य, दान,
जागो, जागो हे युगप्रधान !

यह काल दैत्य ज्वालाभितप्त, करता आता है ध्वस आज,
यह प्रलय केन्द्र उत्तप्त हुआ, है सजा रहा सहार साज,
बन उठो वीर ! हे सजल मेघ, कर दो जगका ज्वालावसान,
जागो, जागो हे युगप्रधान !

जगतीमें छाया निबिडक्लान्त, पथ भूल रहे नर सुगम कान्त,
दिखता है मानव हृदय क्लान्त, सागर लहराता है अशान्त,
लेकर प्रकाशकी एक किरण, करने जगमें आलोक दान,
जागो, जागो हे युगप्रधान !

हे पुरुष आप पुरुषार्थ करें, बर ओज विश्वमें प्राप्त करें,
हे तरुण, तपी तरुणाईसे, नभमें महान् आलोक धरें,
भरकर उरमें सन्देश दिव्य, फैलाने जगमें अतुल ज्ञान,
जागो, जागो हे युगप्रधान !

त्रिपुरीकी झाँकी

त्रिपुरीके सुन्दर प्राङ्गणमें देशोंका कलरव देखा
विन्ध्याचलके विजन विपिनमें शान्ति-क्रान्तिका युग देखा।

नगर-नगरमें कण-कणमें नव वीरोंका बाना देखा
नीले नभमें पूर्ण जनोंका सिंहनाद गुञ्जित देखा।

बिजलीकी झिलमिल आभामें युवकोंको हँसते देखा
वीरोंके वर अट्टहाससे गिरि पर्वत मुखरित देखा।

गिरि-मालाकी मञ्च-वीथिसे लोगोंको आते देखा
मनमें मुकुलित हृदय-क्षेत्रमें नव्य-भाव भरते देखा।

हस्तकलाका सुन्दर विभव भारत-वीरोंकी सेवा
महिलाओंके सुन्दर मनमें सेवा-व्रत जागृत देखा।

तरुणाईकी ललित लालिमासे नभको रञ्जित देखा
प्रबल ओजसे रण कण-कणको उद्भासित होते देखा।

बावन गजसे मुक्त शुभ्र रथका उत्सव करते देखा
लाखों जनताकी जयध्वनिसे फिर नभतल गुञ्जित देखा।

नीले नभमें 'राष्ट्र-पताका'को लहराते भी देखा
'झंडा ऊँचा रहे हमारा'का गाना गाते देखा।

रजनीके नीरव निवेशमें कवियोंका संगम देखा
कोमल कान्त मधुर कविताओंसे नभको पूरित देखा।

कुछ नवचेतन प्रतिनिधियोंको वीरभाव भरते देखा,
'जयप्रकाश' औ वीर 'जवाहर'को गर्जन करते देखा।

सोशलिस्ट लोगोंके दिलको तत्क्षणमें गिरते देखा,
गान्धी-वादी नेताओंको विजयलाभ करते देखा।

कभी जवाहरकी चुटकीयोंसे सबको हँसते देखा,
कभी उन्हींके प्रबल नादसे खून खौलते भी देखा।

'मौलाना'को सजग भावसे जन जागृत करते देखा,
कुछ अभ्यागत मिश्र-वासियोंको हर्षित होते देखा।

श्री 'सरोजिनी'के कूजनसे सभा भवन विस्मित देखा,
'स्वागत नायक'के भाषणसे मन गद्गद होते देखा।

क्या देखा क्या आज बताऊँ, मैंने सब कुछ ही देखा,
पर गान्धी बिन अनुत्साहकी रेखाको विस्तृत देखा।

श्री वीरेन्द्रकुमार, एम० ए०

हिन्दी साहित्यमें श्री वीरेन्द्रकुमार, एम० ए०ने प्रतिभावान् कवि और कलावान् कहानी-लेखकके रूपमें पदार्पण किया है। आपका पहला कहानी-संग्रह 'आत्म-परिचय'के नामसे प्रकाशित हुआ है जिसका हिन्दी-जगत्में समुचित आदर हुआ है।

आपकी कविताओंमें कोमल भावना, ऊँची कल्पना और सात्विक भावुकताका दर्शन होता है। आपकी भाषा प्रांजल और कर्ण-मधुर होती है।

यहाँ उनकी 'वीर-वन्दना' शीर्षक सुन्दर और सजीव कविताके साथ-साथ अन्य कविताएँ भी दी जा रही हैं।

वीर-वंदना

लेकर मलय-मोहन यौवन अधरोंपर बंकिम धनु तानें
मधुरिमकी पुष्प-धनुष-डोरी तुम तोड़ चले ओ मस्ताने।
नन्दन-काननमें अप्सरियाँ बन कमल बिछी तेरे पथमें
पद-रजकी हलकी-सी पराग तू लौट पड़ा पावक रथमें।
वह शीश अर्चना अरुण तरुण रतिकी शैय्या भी थी प्यासी
त्रैलोक्य-काम्य रमणीके परिरम्भको तजके तुम संन्यासी।

बाला-जीवन मोती पूरण सीपोंमें सत्-सन्धान लिये
चितवनमें देव-कालपर शासन करनेका अभिमान लिये।
अधरोंपर वीतराग ममताकी अनासक्त मुस्कान लिये
बन अनदेखित-सी पलकोंमें शाश्वत यौवनका मान लिये।
फिर मोह-रात्रि भवकी अमेय भेदन करने चल पड़े वीर
जीवन जड़-चेतन कूलोंमें तुम कूद चले चेता सुधीर।

हिंसक पशु-सकुल बीहड वन, दुर्गम गंभीर गिरि-घाटीमें,
तुम निर्भय विचरे हिंसा, भय, साक्षात् मृत्युकी घाटीमें।
निर्वसन, दिगम्बर, प्रकृत, नग्न, तुम विकृति विजेता क्षात्र-जात,
पृथ्वी ससागरा लिपटी थी तव चरणोंपर होने सनाथ।
झाडी-झंखाड, वनस्पतियाँ, वल्लरियाँ भरती परिरम्भण,
विषधर विभोर हो लिपट रहे नगी जांघोंपर दे चुम्बन।

नाना विधि जीव-जन्तु कीडे, चीटी, दीमक सब निर्भयतम,
पृथ्वी, जल, अम्बर, तेज, वायु, सब त्रस थावर जड औ' जगम।
तेरी समाधिकी समताके उस वीतराग आलिङ्गनमें,
सब मिलकर एकाकार हुए, निर्बन्धन, तेरे बन्धनमें।
कैवल्य ज्योति, आदित्य-पुरुष, औ तपो-हिमाचल शुभ्र धवल,
तेरे चरणोंसे वह निकली समताकी गगा ऋजु निश्छल।

इस निखिल सृष्टिके अणु-अणुके सघर्ष, विषमता औ' विरोध,
कल्याण-सरितमें डूब चले, हो गया, वैर आमूल शोध।
तेरे पद-नखके निर्झर-तट, सब सिंह, मेमने, मृगशावक,
पीते थे पानी एक साथ, तेरी छायामें औ रक्षक।
जिन-चक्रवर्ति, सातों-तत्त्वोंपर हुआ तुम्हारा नव-शासन,
तीनों कालों, तीनों लोकोंपर बिछा तुम्हारा सिंहासन।

श्री रविचन्द्र 'शशि'

श्री रविचन्द्र 'शशि'की रचनाओंने कुछ वर्ष पूर्वसे ही सबका साहित्य-प्रेमियोंका ध्यान आकर्षित किया है। आपकी आयु अभी बाईस-तेईस वर्षकी है पर आपने समाजके नवयुवक कवियोंमें अपना विशेष स्थान बना लिया है। आपके जीवनके वातावरणमें ही कविताका समावेश है क्योंकि आप समाजके प्रसिद्ध कवि श्री 'वत्सल'जीके दामाद हैं और आपकी पत्नी श्री प्रेमलता देवी 'कौमुदी' भावुक कवयित्री हैं।

श्री रविचन्द्रजीकी कविताएँ कल्पना-प्रधान होती हैं। छायावादी शैली आपको प्रिय मालूम होती है और आपकी राष्ट्रवादी कविताएँ ओजपूर्ण होती हैं।

भारत माँसे

याद आती आज भी है स्वर्ण-भरी तेरी कहानी
कीर्ति-गिरिपर मुस्कुराती जगविजयिनी गजगामी।
थी कभी इस विश्वकी तू कोहनूर, सुवर्ण-चिड़िया
गर्व आज उठा रही थी 'सम्पदाकी पुण्य रानी'।

वीरता जब जोशसे जिसकी बनी गाथा पुरानी
है युगोंसे बनी शाश्वत वीर मनुओंकी कहानी।
अमिट उसमें छप रही थी विश्वकी जब राह सारी
सुगम पथ-रेखा तुम्हारी थी धराके पथ पुरानी।

चमचमा कल-कलस्वरा जिसमें तरंगिणि बोलती थी
गर्जती तुम मेघ-माला तरल मधुरस घोलती थी।
वीर जय-गाथा सुनाकर आज राजस्थान रोता
विजयलक्ष्मी सदा जिसका स्वर्ण-आंगन खोलती थी।

।

आज उसके मृदुल पदमें बेडियाँ है झनझनाती,
किस विरह किस वेदनाका आह, अब वे गीत गाती।
वक्षमें है घाव भारी, हथकडी करमे पडी है,
हा, गुलामी विषम-हाला आज जिसका जी जलाती।

विश्वका आदर्शवादी, आज जग पद चूमता है,
जीर्ण शीर्ण,ऽवशेष टुकडेपर मदी हो झूमता है।
दूसरोंके तालपर हा, गान गाता नाचता है,
हत-वदन वह, आज पीडा-सदनमें हा घूमता है।

आज जगके मुस्कुरानेमें छिपा है हास तेरा,
वेदनाके रक्तदीपोंसे सजा आकाश तेरा।
धराको, तमपुजको, यश-चन्द्रिका तूने दिखाई,
एक अनुचर व्यगसे अब, कर रहा परिहास तेरा।

आज तेरी शक्तियाँ पदमें पडी है, रो रही है,
क्यो वृथा अनुतापका यह भार रो-रो ढो रही है।
जननि, तेरी मातृप्रेमी, हुई जो सन्तति दिवानी,
वह विहँसकर जान क्या सर्वस्वको भी खो रही है।

पद-दलित वसुधा विताडित कहाँ वह, अभिमान तेरा,
खर्व कैसे हो गया, स्वातन्त्र्य-सौख्य-निशान तेरा।
क्या न तू है सिहनी हरि-सुत यहाँ क्या फिर न होगे,
क्या न होगा विश्वमें फिरसे, जननि, जयगान तेरा ?

आँखोंमें लज्जाञ्जन भर दे
यौवन - वेग निहार सकूँ,
बालामृत मद हीन पिला तू
माँ, मेरे शिशु-पालनमें,

मा, किस नारीने आजीवन
निज कर्तव्य निभाया है,
उषा पुजारिन कभी न चूकी
निज रविके आह्वाननमें।

माँ, वह पचरंगा दुकूल अब
बनवा नही नवीन मुझे,
दोष छिपा न सकूँ फेनोज्ज्वल
वसन करूँगा धारण में।

किस मानवका कितना कोई
जीव न मरनेका साथी,
मुदित दिवस-भर नलिनी रहती
चन्द्रोदयके साधनमें।

नर यात्री-पोतोंसे जलकी
क्या अथाह छवि देख सकें,
नक्र चक्र जैसा पाते सुख
सागरके अवगाहन में।

शिशु तो मात गोदको देते
मल-पुरीष क्षेपणसे भर,
तिक्त स्वादसे सबको रुचती
माँ, आँवी बालापनमें।

श्री अक्षयकुमार, गंगवाल

आपने अपना पद्यात्मक परिचय इस प्रकार प्रेषित किया है—

"परिचय मेरा है क्या, जो दूं लेकिन तेरा है आदेश,
इसीलिए कुछ लिख दूं, माता, अजयमेरु है मेरा देश,
ग्राम सिराना है छोटा-सा, उसमें है मेरा लघु धाम,
नेमिचन्द्रजीका मैं सुत हूँ, 'अक्षय' है मेरा लघु नाम,
मारवाडमें रहता हूँ अब है कालू आनन्दपुर ग्राम,
यहाँ किया करता हुँ मात अध्यापन जैसा कुछ काम।
हिमसे भी है अतिशय शीतल, 'ज्वालाप्रसाद' मेरे मित्र,
मार्गप्रदर्शक है मेरे वे, औ' उनका अति विमल चरित्र।
बस इतना तो ही होता है, कविताकारोंका इतिहास,
सुख-दुखकी बातें लिखना तो होगा यहाँ सिर्फ उपहास।"

गंगवालजीकी कविताएँ जैन-पत्रोंमें प्राय छपती रहती हैं। आधुनिक शैलीकी संवेदनाशील और क्रान्तिके भावोको जगानेवाली कविताएँ आप सुन्दर लिखते हैं।

रे मन!

रे मन, मन ही मनमें रम रे।
विकसित होकर प्राण गवाँता उपवनका उद्यम, रे। रे मन०

है दैवी वरदान रूप सौन्दर्य अनूठा मिलना,
किन्तु सदा पीडित देखी निर्धनकी सुन्दर ललना,
नोच-नोच पीडित करते हैं कामी, धनिक, अधम रे। रे मन०

कितना सुन्दर, कितना चंचल बालकका यह मुख रे
पर उसमें क्या तत्त्व देखता दुग्ध व्यापका सुख रे
यही रंग लेकर रहता है उस यौवनका क्रम रे। रे मन

वैभवका वैभव कितना है सुन्दर, सुन्दरतर रे
मधुमय महल अनुपम उपवन गज रथ अरु, अंबर रे
घोर मुसीबतोंसे सिखलाता यह प्रिय अप्रिय क्रम रे। रे मन

अपनापन अपनी स्वतन्त्रता अपनेमें ही सब रे
इस जगकी मायाकी ममता तुमको नहीं परख रे
सहनशीलता नहीं यहाँ तो चलता सहम सहम रे। रे मन

उद्बोधन

उठ उठ मेरे मनके किशोर!
उठ रहा गगन उठ रही अवनि उठ रहा पवन उठ रहा सलिल
पार्थिव कणकणमें व्याप्त किया उठ-उठकर यह ब्रह्माण्ड अखिल
उठ चल उसके साथ-साथ क्या इनसे तू है भिन्न और,
उठ उठ मेरे मनके किशोर!

उठ रहीं वेदनाएँ प्रति पल उठ रहीं भावनाएँ प्रति पल
आहें गान-तान चढ़ रहीं नयनमें आशाएँ चपल चंचल
देखा भावना आशाओंका तू भी उठकर पकड़ छोर,
उठ उठ मेरे मनके किशोर!

मानवता उठती जाती है दानवता बढ़ती जाती है
इस पुण्य-भूमिकी जनतासे अखिलता उठती जाती है
इसको सँभालनेको ही उठ दुख लगा घोर दुख लगा घोर
उठ उठ मेरे मनके किशोर!

हलचल

पतन भी उत्थान भी है।

है जहाँ निशिका अँधेरा, है वही होता सवेरा ,
रवि निशाकरका गगनमें उदय भी अवसान भी है।

पतन भी उत्थान भी है।

सुमन खिलते हैं मुदित हो, म्लान भी होते दुखित हो ,
विश्वकी इस वाटिकामें, म्लान भी मुस्कान भी है।

पतन भी उत्थान भी है।

इन दृगोमें जल छलकता, और उनमे मद झलकता ,
हृदय वारिधिमें जहाँ भाटा वहाँ तूफान भी है।

पतन भी उत्थान भी है।

है कही वीरान जगल, औ' कही उद्घोष दगल ,
इस धरातलपर कही कलरव, कही सुनसान भी है।

पतन भी उत्थान भी है।

है कहींपर मूक पीडा, औ' कही उद्दाम क्रीडा ,
विश्वके वैचित्र्यमे प्रासाद और श्मशान भी है।

पतन भी उत्थान भी है।

है कही साम्राज्य लिप्सा, औ' कही भीषण बुभुक्षा ,
विश्व मन्दिरमें कही षट्रस, कही विषपान भी है।

पतन भी उत्थान भी है।

श्री चम्पालाल सिंघई, 'पुरन्दर'

आपकी जन्म-तिथि ६ फरवरी सन् १९१९ है। आपने माधव कॉलेज उज्जैनमें एफ० ए० तक शिक्षा पाई है और उसके उपरान्त अपने व्यापार कार्यको सँभाल लिया है।

आप सन् १९३५से कविताएँ और कहानियाँ लिख रहे हैं जो समय-समयपर जैन-पत्रों तथा 'माधुरी' 'मधारी' और 'जयाजी प्रताप' आदि साहित्यिक पत्रोंमें प्रकाशित होती रही हैं। आपने बाल-साहित्यकी भी सृष्टि की है। 'झुनझुना' नामक बालकोंके पत्रमें आप 'सरपु-बहोर' के नामसे लेख और कहानियाँ देते हैं।

आपके छोटे भाई श्री मैयालाल सिंघई सुन्दर गीतिकाव्य लिखते हैं।

'पुरन्दर'जीकी कविताएँ ओजस्वी और प्रसाद गुणयुक्त होती हैं।

1

दीप-निर्वाण

(कन्याके स्वर्गवासपर)

पलमें हुआ दीप निर्वाण।

जीवनका पूरा प्रकाश था,
आशाओंका मधुर हास था,
प्रेम-पयोनिधिका विलास था,
दो हृदयोंके स्नेह-मिलनका सुन्दर फल था वह अनजान।

जब तक श्वासा तब तक आशा,
कुटिल जगत्‌का यही तमाशा,
क्षणमें आशा हुई निराशा,
ज्योति मनोहर क्षीण हो गई, नष्ट हुए उसके अरमान।

जब तक नश्वर देह न छूटी,
तब तक ममता-रज्जु न टूटी,
हाय, कालने कैसी लूटी,
अभी-अभी सुख-सेज रही जो वह भी अब बन गई मसान।

चन्देरी

रहे चिरन्तन चन्देरी जिसको निज मान दुलारा है।

उठा सघन चिर तुंग विन्ध्य-गिरि जिन रक्षा-रत होता
वेत्रवतीका परम पूत पय पादाम्बुजको धोता
जिसका नाम-स्मरणमात्र मनसे कायरपन खोता
सदा काल अद्भुत साहसका रहा अनोखा सोता।
वीर-धीर रणसिंह-व्रती कुल-नायकरोंका प्यारा है।

जिसने स्वाभिमानसे अपना ऊँचा शीश उठाया
उस शिशुपाल नृपाल-श्रेष्ठका सुयश मही में छाया
यहाँ कन्दराओंमें अनुपम मूर्तिसमूह रचाया
तपकर यहाँ महर्षिवरोंने ज्ञान अनोखा पाया।
जिसके अनुगामी हैं समझे 'पृथक्' भूतल सारा है।

कीर्तिपालकी कीर्ति कीर्तिगढ़ यहाँ अचल अभिमानी
बुन्देलोंके भाग्यवानको जो अमरत्व-प्रदानी
राजपूत महिलाओंके जौहरकी अमिट निशानी
कण-कण कथित यहाँ राणा साँगाकी विजय-कहानी।
अघ-धावन हित आचार्यवर-युत यहीं त्यागकी धारा है।

शिल्पकला-कौशलकी कोने-कोने फैली राका
वस्त्र-कलामें निपुण मध्य-भारतका यह है ढाका
रिक्त न होगे कभी रम्यता कोष विपुल सुषमाका
गूँज रहा है आज सिन्धियाके प्रतापका साका।
आत्मशक्ति-साहसके मनमें यश-सौरभ विस्तारा है।

प्रगति-प्रवाह

श्री मुनि अमृतचन्द्र, 'सुधा'

श्री अमृतचन्द्र 'सुधा'का जन्म सन् १६२२में आगरेमें हुआ। आपके पिता प० युगलकिशोरजी अपने यहांके प्रसिद्ध ज्योतिषी थे। सन् १६३८ में इन्होंने स्थानकवासी सम्प्रदायकी मुनि-दीक्षा ले ली। आपने लगभग सात कविता-पुस्तकें रची हैं, जो प्रकाशित हो चुकी हैं।

इनकी कविताओंका विषय प्राय धार्मिक, सामाजिक और सांस्कृतिक होता है। कविताकी शैली आधुनिक ढगकी है। भाषा और भाव सरल होते हैं।

अन्तर

मानस मानसमें अन्तर है।

अडी खडी है आज हमारे
सम्मुख कैसी जटिल समस्या,
सुलझ न सकती, अरे, कहो, क्या
विफल हुई सम्पूर्ण तपस्या ?
सुप्त पडी है वही भूमिका जिसपर उन्नति पथ निर्भर है।

गर्वित था जो देश कभी
अपने गौरवके गानोंसे,
आज शून्य होता जाता वह
नितके नव-अपमानोंसे।
नाम हमारा कभी अपर था, काम,हमारा आज अपर है।

रह करके परतन्त्र हमारा
क्या कम जीनेमें है जीना
वीरोंका वह खून अरे क्या
निकल गया बन पतित पसीना ?

कहो आज अस्तित्व हमारा क्योंकर तुला नगण्यतापर है !

बढ़े चल

बढ़े चल अरे पथिक मत थाम !
जब तक तेरे विस्तृत पथकी अन्तिम सन्ध्या निकट न आ ले ।

देख कहीं अब तू मत सोना व्यर्थ समय यों ही मत खोना
कभी न भूल प्रमादी होना निष्फलताका बोझ न ढोना ।
भयको कर भयभीत हृदयसे निर्भयताको ध्येय बना ले ।

चाहे लाखों संकट आवें भीषणताएँ आन सतावें
पर तेरे पथकी सीमाएँ पथसे विचलित हो ना जावें ।
अपनी धुनमें गाये जा तू, अपने पथके गीत निराले ।

पथ पतन हो प्रतिदिन तेरा कह दे मैं अपना जग मेरा
कभी मार्गमें हो न अँधेरा जब तू जागे तभी सवेरा ।
पराधीनताके मुखमें तू जड़ दे स्वाधीनताके ताले ।

बढ़ मन आगेको बढ़ना था उन्नतिके शिखर चढ़ना था
पाठ्य परीक्षामें पढ़ना था निजसे निजताको गढ़ना था ।
होकर प्रेम प्रमत्तमें पावन पीले भर-भर स्नेहके प्याले
जब तक तेरे विस्तृत पथकी अन्तिम सन्ध्या निकट न आ ले ।

जीवन

प्रेममय जीवन बनूं मैं।

साधना मेरी अभय हो, सत्यसे सुरभित हृदय हो,
सफल लक्ष्मी वर विनय हो, सुखद मेरा प्रति समय हो।

स्वच्छता-धन घन बनूं मैं।

हो मिली मुझको सफलता, और अचला-सी अचलता,
नाश हो सारी विफलता, मैं निभा पाऊँ सरलता।

सरसता-उपवन बनूं मैं।

दृग् सदयताके सदन हो, मधुर मधुसे भी वचन हो,
मित्र मेरे सुजन जन हों, लख मुझे सब मुदित मन हो।

आप अपनापन बनूं मैं।

पाउं सत्कृतमें सुगमता, त्याग दूं सम्पूर्ण ममता,
भस्म कर डालूं विषमता, धार लूं निज आत्म-दमता।

निर्धनोंका धन बनूं मैं।

मानसिक सध्या विमल हो, भावना मेरी धवल हो,
धर्ममय पल हो, विपल हो, शील भी शुभ हो, सबल हो।

सौख्यका साधन बनूं मैं।

श्री घासीराम, 'चन्द्र'

श्री घासीराम 'चन्द्र' नई सराय लगभग १०-१२ वर्षसे कवितायें लिख रहे हैं। प्रारम्भमें आपने कवि-सम्मेलनोंके लिए समस्या पूर्ति करके कविता रचनेका अभ्यास किया। अब आप स्वतन्त्र विषयोंपर रचनाएँ करते हैं। आप भावोंकी सुकुमारताकी अपेक्षा विषयकी उपयोगिताकी ओर अधिक आकर्षित होते हैं।

फूलसे

चार दिनकी चाँदनीमें फूल क्योंकर फूलता है?
बैठकर सुखके हिंडोले हाय निश-दिन झूलता है!

आयगा जब सघन पावस ले सलोना सुख सुवासित
हाय मन रह जायेंगे माली बनेगा शून्य उपवन।

फिर बता इस क्षणिक जीवनमें अरे क्यों भूलता है?

भर रहा शृंगार नव-नव भिन्न-भिन्न सजा-सजाकर
पा रहा आनन्द पुरजन प्रेम-बीन बजा-बजाकर।

कालकी इसमें सदा रहती अरे प्रतिकूलता है!

आज तू सुकुमारतामें मग्न है निश-दिन निरन्तर
एक क्षण-भरमें अरे हो जायगा अति जीर्ण अन्तर।

है यही जग-रीति क्षण-क्षण सूक्ष्म भी स्थूलता है।

आज जो हर्षा रही पाकर तुझे सुकुमार डाली ;
कल वही हो जायगी सौभाग्यसे बस हाय खाली ।

देखकर लाली जगत्की काल निश-दिन भूलता है ।

आज जो तेरे लिये सर्वस्व करते हैं निछावर ,
कल वही पद धूलमें तेरे लिये फेंके निरन्तर ।

स्वार्थ-मय लीला जगत्की, मूर्ख, क्योंकर हूलता है ।

विश्वका नाटक क्षणिक है, पलटते हैं पट निरन्तर ,
आज जो है कल उसीमें ही रहा सुविशाल अन्तर ।

है अभी अज्ञात इसमें 'चन्द्र' क्या निर्मूलता है ,
चार दिनकी चाँदनीमें फूल क्योंकर फूलता है ?

पं० राजकुमार, 'साहित्याचार्य'

पं० राजकुमारजी जैन-समाजके अतीव होनहार और सुयोग्य विद्वान् हैं। आप संस्कृत साहित्यके तो आचार्य हैं ही हिन्दीके भी सुलेखक और कुशल कवि हैं। आपने 'पार्श्वाभ्युदय' नामक संस्कृत काव्यका हिन्दी-कवितामें सुन्दर अनुवाद किया है। वे खंड-काव्य तथा अतुकान्त कविता लिखनेमें विशेष रूपसे सफल हुए हैं।

आह्वान

जब जीवन-आम्राकाश घिरा था
कुटिल कलुष-घन-मालासे।
धू-धू कर जले जा रहे थे
नर-पशु जलती कटु-ज्वालामें॥
भू भौंका था पड़ रहा जब
आकाश सजल-नयनाम्बित था।
वह स्नेह, विश्व-बन्धुत्व-भाव
जीवनमें कहीं न किञ्चित् था॥
तब वीर वीर, तुमने आकर
समताका पाठ पढ़ाया था।
वसुधापर सुधा-कलित करुणा-
का सुन्दर स्रोत बहाया था॥

× × ×

पर वीर, तुम्हारा धर्म-मार्ग
हो चुका आज विस्मृत विलीन।
कर रहे आजसे फिर मानव-
मनुज मानवताको मलीन॥

जल रहे निखिल पुरजन-परिजन
विध्वंस - पिण्ड - ज्वालाओमें ।
है चीख रही मारी जनता
उन कोटि-कोटि मालाओमें ॥

लुट गया आज माताओका
सौभाग्य, हुई सूनी गोदी ।
मानवने फिर संहार-हेतु
वह एक नई खाई खोदी ॥

नर कही तरसते दानेको
शिशु कहीं बिलखते मात-हीन ।
झोंके जाते हैं कही वही
स्फोटक - ज्वालाओमें, कुलीन ॥

हे वीर, विषमता यह कैसी
कैसा यह अत्याचार-जाल ।
क्यो हुआ अचानक ही कैसा
भीषण यह कुटिल कराल काल ॥

आओ, फिर आओ, महावीर,
यह विषम परिस्थिति सुलझाओ ।
सत्पथसे भूली जनताको
मङ्गलमय पथ दिखला जाओ ॥

श्री ताराचन्द, 'मकरन्द'

'मकरन्द'जीकी कविता प्रायः जैन-पत्रोंमें छपती रहती है। इनकी कविताएँ शैलीमें छायावादी ढंगकी होती हैं। जहाँ कविताओंका मन्तव्य कुछ अस्पष्ट हो जाता है वहाँ छायावादी शैली कवि और पाठक दोनोंके लिए बाधक हो उठती है। आशा है प्रगतिकी सीढ़ियोंपर दृढ़तासे पग रखते हुए 'मकरन्द' अभी आगे और बढ़ेंगे—ठीक दिशामें।

जीवन घड़ियाँ

ओ प्राण, प्राण खोनेवाले
हो गया देख स्वर्णिम प्रभात
जीवन-घड़ियाँ क्यों नींदमें
यों बिता रहा जब गई रात ?

सोते मदहोश तुम्हें मानव
हैं बीत चुकी अगणित सदियाँ
क्यों अलसाये तुम पड़े हुए
खो रहे आप अपनी निधियाँ ?

मानस-तटपर यद्यपि तेरे
आते हैं विघ्नोंके वितान
फिर भी तू सोता ही रहना
आलसकी चद्दर तान-तान !

जीवनके क्षण-क्षण बीत रहे
मोतीकी टूट रही लड़ियाँ,
इन इने-गिने दो दिनमें ही
बीती जाती जीवन-घड़ियाँ।

फिर हाथ भला क्या आयेगा
सचमुच यदि हालत यही रही,
मौका पा करके ही धो लो
बहती गंगाकी धार यही।

ओस

रजनीके प्रियतम बनकर, ले प्रणय वेदना सपना,
आये निशीथके अचल, अस्तित्व मिटाने अपना।
ऊषाकी अरुणा नभसे स्वागत करनेको तेरा,
प्रतिबिम्बित हो प्रतिक्षणमे, तेरा शृंगार सुनहरा।
अथवा स्वर-परियोंके ये, मालाके मोती क्षितिपर,
किसके उरमें परिवेदन, उनकी निर्ममतम कृतिपर।
किस हृदयहारके अनुपम, उज्ज्वल ये बिखरे मोती,
शृंगार सुरभिमें परिणत, तुमने छोड़ा है रोती?
स्वप्नोंकी अर्ध-निशामें शीतल समीर झकझोरे,
निस्तब्ध प्रकृतिके आँसू पुलकित उरके किलकोरे।
देदीप्यमान रवि आकर, वसुधापर नवल प्रभाएँ,
तेरे मृदुतम तव तनसे कई एक निकलती आहें।
क्षणभंगुर है जग-मानव, जल-कणकी करुण कहानी,
वैराग्य हृदयमें तेरे, नयनोंमें होगा पानी।

पुनर्मिलन

मेरी जीवन कुटियामें तुम एक बार फिर आना ।

जीवन वसन्तमें मेरे
जब आई हो मधुमाई
कोकिलके पुलकित स्वरमें
हो प्रेम रागिनी गाई
जीवनके पुनर्मिलनमें मैंने तुमको पहचाना ।

मैं मुकुल मालिनी भोली
तू मत्त-मधुप-सा भोगी
तेरे वियोगमें मेरी
अन्तर्ज्वाला क्या होगी
स्वर क्षीण हुई वीणाकी तन्त्रीके तार बजाना ।

मेरे जीवन उपवनमें
नव सुरभित सुमन खिले हों
फिर-फिर वसन्तके पथमें
कलियोंसे मधुप मिले हों
लहरोंके फेनिल पथमें बस एक बार मुस्काना ।

हों चन्द्र हीन प्रिय रजनी
ये झिलमिल नभके तारे
मैं शून्य वासिनी वनकी
ये ही हैं एक सहारे
सहसा विलीन हो निधिमें फिर भूल मुझे मत जाना ।
मेरी जीवन कुटियामें तुम एक बार फिर आना ॥

श्री सुमेरचन्द्र, 'कौशल'

श्री सुमेरचन्द्रजी वकील 'कौशल' सिवनीकी प्रसिद्ध फर्म हुकमचन्द कोमलचन्दके मालिक हैं। आपने अभी तीन वर्ष पूर्व वकालत प्रारम्भ की है। आपकी अभिरुचि बाल्यकालसे ही साहित्य, दर्शन और संगीतकी ओर विशेष रूपसे है। आप लेख, कहानियाँ और कविता लिखा करते हैं जो जैन-अजैन पत्रोंमें सम्मानके साथ प्रकाशित होती हैं। आप एक प्रभावशाली वक्ता और उत्साही सामाजिक कार्यकर्ता भी हैं। आपकी कवितामें दार्शनिक पुट रहती है, फिर भी वह सुबोध और सुन्दर होती है।

जीवन पहेली

इस छोटेसे जीवनमें, कितनी आशाएँ बाँधी,
लघु-उरमें भावुकताकी आने दी भीषण आँधी।
आशाका उड़नखटोला ऊँचा ही उड़ता जाता,
क्या मृगतृष्णामें पड़कर, यह जीवन सुखी कहाता ?
दुख सुखकी आँखमिचौनी है सब संसार बनाये,
आशा तृष्णाके वश हो, जगतीमें पुरुष भ्रमाये।
जीवन है अजब पहेली, क्या भेद समझमें आये,
'कौशल' ज्यों इसको खोलो, त्यों-त्यों यह उलझी जाये।

आत्म-वेदन

निराशामें बैठे मन मार,
किया करते हो किसका ध्यान
बनाकर पागल जैसा वेष
किया क्यों सुन्दर तन मलि म्लान ?

अरे तुम हो उत्कृष्ट विभूति
प्रकृति-लक्ष्मीकी सुन्दर तान
मृषा सुख-स्वप्नोंका छवि-धाम
किया क्यों मायाका परिधान ?

लिया क्या छीन तुम्हारा प्यार,
किसी निर्मम निर्दयने आज
बनाया कातर किसने आज
दूसरोंके हो क्यों मुँहताज ?

खोल निज अन्तर्दृष्टि महान्
त्याग दुनियाके कार्यकलाप
खोजता फिरता है तू जिसे
हृदयमें छिपा हुआ है 'आप'।

श्री बालचन्द्र, 'विशारद'

श्री बालचन्द्रकी आयु अभी २० वर्षकी है। कविता रचनेमें इनकी नैसर्गिक प्रवृत्ति है। मालूम होता है जीवनके विषादने इन्हें निराशावादी बनाया है। ये अपने आपको 'नियतिके हाथकी गेंद' मानते हैं।

बालचन्द्रजी कविता केवल 'स्वान्त सुखाय' रचते हैं, और इसमें वास्तविक आनन्द अनुभव करते हैं।

चित्रकारसे

चित्रकार चित्रित कर दे।
मेरा शिव औ' सत्य चित्र, सुन्दर पटपर अंकित कर दे।

नैराश्य-सिन्धु यह अगम अतल,
जीवन-नौका हो रही विचल,
लहरें घातक, अतिशय हलचल,
मन-माँझी भी मेरा चचल,
सुख दुखकी विकट तरंगोंको तू उत्तालित दर्शित कर दे।

मेरे जीवनमें प्रेम छिपा,
अनुराग छिपा, सन्ताप छिपा,
पीडाओंके उद्गार छिपे,
हँसते-रोते उद्गार छिपे,
कुछ हूक छिपी कुछ भूख छिपी, स्पष्ट आज सन्मुख रख दे।

मेरे जीवनमें व्याज नहीं
मेरे जीवनमें साज नहीं
मेरे मस्तकपर ताज नहीं
मुझपर हो अपना राज नहीं

—मैं सदा निराश्रित निवृत्ति-आस्था-आश्रित हूँ इसमें निज है।

सन्ताप-तप्त मैं चलते अब
आक्रान्त व्यथित पृथ्वीके कण
वातायन क्षण बृहत्तर बन
संकुल-व्याकुल जन-पद पन वन

ऐसे कितने आदर्श ढूंढकर पृष्ठभूमि निर्मित कर दे।

९ अभ्यस्त

यह दिन महान

स्मृतिपटपर अंकित निशान
मानस पीडाका मूर्त ज्ञान
झंकृत करता हृतन्त्रि तान
चकित कम्पित निरभ्र प्राण
हुआ आह पान ।

लम्बी रजनीका अवसान
स्वर्णिमाका पुन दीप-दान
नैराश्य तमसका भ्रान्त मान
अन्तरका आशा ज्योति ज्ञान
सस्मृत स्वज्ञान ।

वह दृश्य आज भी कम्पमान,
आता समक्ष जीवित सप्राण,
अनजान आर्त्तिसे भयाक्रान्त,
शकित हो उठते युगल कान,

वह अश्रुदान।

वे नवयुगके नवयुवक-प्राण,
वे सजग, गठिततन औ' सज्ञान,
झडा करमें ले स्वाभिमान,
वढ-वढ करते थे शीस-दान,

वह राष्ट्र-मान।

वह क्रन्दन-स्वर, वह रुदनगान,
वह पीडा, वह अस्ताभिमान,
सन्तप्त मान, सत्यक्त जान,
सकल्पशक्तिसे शक्त प्राण,

अव भी समान।

हम शान्त रहें या रहें क्लान्त,
हम सुखी रहें या दुःख उद्भ्रान्त,
हम मुक्त रहें या पराक्रान्त,
स्मरण रहेगा यह वृत्तान्त,

यदि देश ज्ञान।

गीत

आज हमें फिर रोना होगा।

नई-नई आशाएँ लेकर
अरमानोंको खूब संजोकर
स्वप्न-चित्र सुखका खींचा था आज उसे फिर खोना होगा।
आज हमें फिर रोना होगा।

मधुर कल्पना-जाल बिछाकर
अनुपम अभिलाष महल बनाकर
निर्मित अथक अलौकिक उसको आज वाष्प हो खोना होगा।
आज हमें फिर रोना होगा।

अब न रहेंगी सुखद धृतियाँ
शेष बचेंगी मधुरस्मृतियाँ
उन्हें छिपाये ही हृदयमें मरते मरते जीना होगा।
आज हमें फिर रोना होगा।

'आंसूसे'

कौन आ रहा है तुम जिसका ,
स्वागत करने आए हो ।
चुन-चुन मुक्तामणि सुन्दरतम ,
हार सजाकर लाए हो ॥१

कहो, आज क्यो प्रकट हुए हो ,
मग्न हृदयके मृदु उद्गार ।
कैसे ढुलक पडे हो बोलो ,
कैसा पीडाका उद्धार ॥२

अरे वेदनाके सहचर तुम
तप्त हृदयके मृदु सन्ताप ।
उमडी पीडाकी सरिताके ,
कैसे अभिनव अनुपम माप ॥३

छलक पड़े तुम, ढुलक पडे तुम ,
मन्द-मन्द अविरल गति धार ।
इन विपदाओंके समक्ष क्या ,
मान चुके हो अपनी हार ॥४

हार ! नही, यह विजय तुम्हारी ,
सहनशीलताके सुविचार ।
आंख उठाकर देखो, रोता
हमदर्दीसे यह ससार ॥५

श्री हरीन्द्रभूषण जी, सागर

श्री हरीन्द्रभूषणजी एक उदीयमान कवि हैं। यह गवर्नमेंट संस्कृत कॉलेज बनारसके साहित्यशास्त्री हैं और हिन्दीके अच्छे लेखक हैं।

निवास-स्थान इनका सागर है और कुछ वर्ष तक ये स्याद्वाद महाविद्यालय तथा हिन्दू विश्वविद्यालय काशीके स्नातक भी रह चुके हैं। साहित्यकी तरह समाज और राष्ट्र-सेवाके भी आपको लगन है।

आपकी कविता भावपूर्ण और भाषा प्राञ्जल है।

वसन्त

मैं समझ नहीं पाया अब तक,
किस तरह मनाएँ हम वसन्त।

(१)

अधनंगा बदन अधभरा पेट
है दीन बड़ा यह दलित ग्राम।
पाँवोंमें मोती छलक रहे
मैं समझ गया यह कृषक ग्राम।

सर्दी गर्मीका नहीं भेद
श्रमसे जिसको है सदा काम।
भरपेट अन्न जिसको न मिले
जिससे चलती दुनिया तमाम।

विश्वम्भर अन्नपूर्णाके,
सुतका जब ही यह हाल हन्त।
मै समझ नही पाया अब तक,
किस तरह मनाएँ हम वसन्त।

(२)

परसेवा जिसका एक ध्येय,
तनकी जिसको परवाह नही।
मानव मानवको खीच रहा,
यशकी जिसको कुछ चाह नही।

भूखे नगे बच्चे फिरते,
मुँहसे न निकलती कभी आह।
रोटी-रोटीका जटिल प्रश्न,
जिसको करता प्रतिक्षण तबाह।

भारत माँके इन पुत्रोका,
इस तरह जहाँ हो विकल अन्त।
मै समझ नहीं पाया अब तक,
किस तरह मनाएँ हम वसन्त।

(३)

आ गया द्वार पर वह देखो,
दिख रहा क्षीण ककालमात्र।
औरत बच्चे सब भूख-भूख,
चिल्लाते करमें लिये पात्र।

पर नहीं तरस हम खाते हैं
कह देते या पाये वह जा!
पा रहा किया का फल तूने
बस भरता जा सब ही भर जा।

इस तरह भूखकी उसाँसें
चलते रहते अविरत अनन्त।
मैं समझ नहीं पाया अब तक
किस तरह मनाएँ हम बसन्त।

(४)

इस तरफ गगनचुम्बी प्रासाद
जिनमें रहते दो-तीन प्राण!
मानवताका उपहास यहाँ
मानवता बैठी मूर्तिमान।

दूसरी तरफ हम देख रहे
टूटी टटियापर घास-फूस।
बकरी मेंढ़ोंकी तरह जहाँ
जन रहते जिनमें ठूँस-ठूँस!

इस तरह विषमताकी ज्वाला
होती जाती प्रतिपल ज्वलन्त।
मैं समझ नहीं पाया अब तक
किस तरह मनाएँ हम बसन्त।

(५)

दाने-दानेको तरस जहाँ,
बच्चे बूढ़े दे रहे प्राण।
पथपर शवका लग रहा ढेर,
गृह स्वर्ग तुल्य हो गये श्मशान।

द्रौपदि, सीता, सावित्री-सी,
कुल-वधुएँ क्या कर रही आज।
तन बेच रही दो टुकडोपर,
हो गया पतित मानव समाज।

दो-दो आनेमें पुत्रोको,
माँ बेच रही हो जहाँ हन्त।
मैं समझ नही पाया अब तक,
किस तरह मनाएँ हम वसन्त।

श्री सुमेरुचन्द्र शास्त्री, 'मेरु'

आप सहारनपुर (यू. पी.)के रहनेवाले हैं। व्याकरण, न्याय और साहित्यके विद्वान् हैं। ब्रजी बोलीमें सवैया आदि छन्दोंमें बहुत सुन्दर रचना करते हैं। स्थानीय साहित्यिक क्षेत्रमें आपका बहुत आदर है। यह 'कवि संघ' सहारनपुरके मन्त्री हैं। समस्या-पूर्ति विशेष करके सफलतापूर्वक करते हैं।

शारदा-स्तुति

शारदे, निहारि दे कृपाकी कोर एक बार
कल्पनामें केशव कवीन्द्र बन जाएँ हम
वीररस भूषणकी व्यञ्जित पदावलीसी
ओज-भरी प्रतिभाका रूप दिखलायें हम
'सूर' सी सरस रस-रोचनामें सिक्तसूक्त
'तुलसी' सी भाव भक्तिताकी झुलायें हम
'मेरु' कवि वीणापाणि वीणा झनकार दे तो
मञ्जुल पताका कविताकी फहरायें हम।

सुमन उपालम्भ

नहिं दुख जरा भी हुआ मनको
जब डालसे तोड़ निकाला गया
नहिं शान्ति मलीन भई तब भी
जब थालमें डाल उठाया गया
उफ़ भी निकली न जुबांसे मेरी
जब रूप कुरूप बनाया गया
पर दुःख है तुमसे महा बुधकी
कफ़नसे यह तौलमें लाया गया।

महाकवि तुलसी

राघव पुनीत पद-पद्मका पुजारी वह
भक्त मण्डलीका एक धीर वीर नेता था ,
अटल प्रतिज्ञामें था, अचल हिमाचल-सा
ज्ञान-कर्म-भक्तिकी पवित्र नाव खेता था ।
अणु परमाणुओमें सारे विश्व मण्डलोमें
रामका स्वरूप देख 'राम' नाम लेता था ,
'हुलसी' का लाल हिन्द हिन्दी हियमाल वन
राम-पद प्रीतिका मनोज्ञ ज्ञान देता था ।१

धन्य वह कटकोकी डाल अभिनन्दनीय
विकसित होता जहाँ सुमन सहास है ,
ससृतिमें धन्य वह पतझडवाला ऋतु
जिसमें छिपा हुआ वसन्तका विलास है ।
नर देह नश्वर भी जगमें प्रशसनीय
क्रीडाका अनन्तकी वना जो अधिवास है ,
दीनोका दलित देश धन्य कहलाये क्यो न
'तुलसी'-सा रत्न जहाँ करता प्रकाश है ।२

कविवर, तेरी भारतीमें है अनोखी ज्योति
होती ज्यों पुरानी त्यो नई-सी दिखलाती है ,
विश्वका रुदन और सृष्टिका विशद हास
मृदुल 'पदावली' तो स्वय वताती है ।
एक-एक छन्दसे है वसुधा सुधामयी-सी
जीवन सगीतका अपूर्व गीत गाती है ,
अतएव मुग्ध होके आज कवि-मण्डली भी
तुलसी पदोमें प्रेम-अजलि चढाती है ।३

कवि-गर्वोक्ति

अतुलित शक्ति मेरी कौन जानता है कहो,
चाहूँ तो त्रिलोकमें नवीन रस भर दूँ,
भर दूँ महान् ज्ञान विपुल विलास हास,
विशद विकासका विचित्र चित्र धर दूँ।
विहँस न पाई जो प्रसुप्त सदियोंसे पडी
ऐसी भावनाओंका प्रकाश दिव्य कर दूँ,
मेरी मति माने तो तुरन्त मन्त्र मारकर
देशके अशेष व्यपदेश क्लेश हर दूँ।१

विषम विषैले पार तथ्यसे हलाहलको
सार-हीन कर अस्तित्व भी मिटा दूँ मैं,
जटिल समस्या या कि कठिन पहेली क्या है
विधिके विधानका भी गौरव घटा दूँ मैं।
शखनाद जयपूर्ण पार हो क्षितिजके भी,
अचल हिमाचलको सचल बना दूँ मैं,
कल्पना-किलेमें जिसे बाँधना असम्भव हो
सम्भव बना दूँ यदि शक्ति प्रगटा दूँ मैं।२

श्री अमृतलाल जी, 'फणीन्द्र'

श्री अमृतलालजी 'फणीन्द्र' टीकमगढ़ स्टेट और झाँसी जिलेके प्रमुख जनप्रिय साहित्यिक और सुकवि हैं। आपकी कविताएँ, कहानी, एकांकी तथा लेख सार्वजनिक पत्र-पत्रिकाओंमें प्रकाशित होते रहते हैं। आपकी रचनाएँ मार्मिक और मर्मस्पर्शी हैं। आपकी 'विश्वशान्ति' (नाटक) और 'रेशमकी लड़ाई' (आल्हा)—यह दो रचनाएँ शीघ्र ही प्रकाशित होकर पाठकोंके हाथमें पहुँचेंगी।

'फणीन्द्र'जी साहित्यिक ही नहीं बल्कि एक कर्मठ राजनीतिक कार्यकर्त्ता भी हैं। आप ओरछा स्टेटके एम. एल. ए. तथा 'ओरछा-सेवा-संघके सहायक मन्त्री हैं। आपसे साहित्य समाज तथा देशको अनेक आशाएँ हैं।

क्रान्तिका सैनिक

मैं अंतिम युगका अमर शान्ति सैनिक संसार हिला दूँगा
मानवतापर मर मिटनेकी घर घरमें आग जला दूँगा।
जो समझते शोषण कर्त्ताओ मानव बन दानव आया है
शासकता बनके मानवताका भूत सामने आया है।
तुमने मजदूरोंको तरसाया मुट्ठी-मुट्ठी दानोंको
टुकड़े-टुकड़ेपर कटवाया तुमने जीवित सन्तानोंको।
सड़कोंपर मुर्दा मजदूरोंको देख-देख मुख मोड़े तुम
कंगालोंकी भूखी टोली सब पूछे नहीं समझे तुम।
सोचा तुमने भी नहीं तनिक आखिर इन्सान तुम्हींसे हैं
ये तनिक अन्नके भूखे हैं ये तनिक मौतके प्यासे हैं।
अब जला तुम्हारा बल तुमने मुँहमेंसे छीना कौर मेरा।
दुखड़ा ठुकराकर वंचित अपमानित करके छीना ठौर मेरा।

इस तरह अनेको इस जजर सीनेसे कुटिल प्रहार सहे,
इन पके हुए फोडोपर भी दुष्कृत्य अनेको वार सहे।
नहि सह सकता हर्गिज़ आगे दुर्दान्त दासताके बन्धन,
नहि सुन सकता हर्गिज़ आगे पद दलित प्रजाके नित क्रन्दन।
हममे बल है उजडी वगियाको गुलशन पुन बना देंगे,
लेकिन इन काले कृत्योका तुमसे भरसक उत्तर लेंगे।
मेरे इस विकल धधकते दिलसे निकलेंगी चीत्कारे,
सत्ताधीशोंके महलोकी हिल जाएँगी दृढ़ दीवारें।
मेरी वाहोमे वह वल है सौदामिनि दिश-दिश तडक उठे,
मेरी आहोमें वह वल है विप्लवकी अग्नी भडक उठे।
मेरे लघु एक इशारेपर अम्बरके तारे टूट पडें,
वस मेरे फकत इशारेपर ज्वालागिर दिश-दिश फूट पडें।
मैं हिलूँ, डगमगा उठे भूमि, मुर्दा क़ब्रोंसे बोल उठे,
अँगडाई लेने लगे विश्व अविचल सुमेरु भी डोल उठें।
मैं वह सैनिक जिसको मरनेसे किंचित् होता क्षोभ नही,
माँकी गोदीकी ममता या यौवनके सुखका लोभ नही।
हम नही हिलाये जा सकते शस्त्रोंके कुटिल प्रहारोंसे,
अव नही दवाये जा सकते जुल्मो औ अत्याचारोंसे।
हम साम्यवादके दूत हलाहलको हँस-हँस पीनेवाले,
हम आजादीके पूत मौतसे लड-लडकर जीनेवाले।
है आज फैसला जगकी आजादीका या आलादीका,
जन रक्षामें उलझा सवाल है दुश्मनकी वरवादीका।
कर देंगे चकनाचूर शत्रुको इन फौलादी पावोंसे,
शासन जनताका जनतापर करवा देंगे निज प्राणोंसे।
रहने नहि देंगे दुनियामें हम भाग्य विधाता ए पैसे,
कंगालोकी भूखी टोली फिर आएगी आगे कैसे?

दानवता हत्याखोरोंकी मानवताके पद पकड़ेगी
जो आज झुकाती है ताकत वह मुक्त शिर पगमें रख देगी।
नहिं होगा कोई गरीब और सरमायादार नहीं होंगे
साम्राज्य नहीं फासिज्म देश द्रोही गद्दार नहीं होंगे।
नहिं पाएँगी नयनों समक्ष पैशाचिकताकी तस्वीरें
हों खण्ड खण्ड कड़कड़ा उठें दुर्दान्त हमारी जंजीरें।
फिर रह न सकेंगे क्रूर कहीं धरतीपर नवयुग आयेगा
कोने कोनेमें मजदूरोंका झण्डा अब फहरायेगा।

सपना

(इंग्लैंडके चुनाव पर)

आज देखा एक सपना।

फिर दुर्गति चरु जिसकी सजग हो हो ढूँढते थे
देखता हूँ आज जिसकी याद से भरि घूरते थे।
ताकतके दुर्ग ढहते भूमि मुष्टिज श्रम देखें
कालिमाकी खाइयोंपर मरघटे मुहताज देखे।
स्वर्ण सिंहासन ढलन्ते धूलिमें रवि रश्मि देखी
जिसके पगधूलियोंकी विजयकी प्रतिमूर्ति देखी।
झूमती है निराभूषण शान्तिकी मन हरन प्रतिमा
कालिमाको चीर लालीकी यही नव रश्मि आभा।

तान भृकुटि मद रहे सब—
जहाँ अपनी जित परना
आज देखा एक सपना।

श्री गुलाबचन्द्र, ढाना

आप सागर जिलेके ढाना ग्रामके निवासी हैं। अनेक विषयोंकी जानकारी रखनेके अतिरिक्त साहित्यसे आपको विशेष रुचि है। अपने यहाँके राजनैतिक क्षेत्रमें भी ये सक्रिय भाग लेते हैं और जेल-यात्रा कर आये हैं। कविता अच्छी कर लेते हैं। अन्तरकी अनुभूतिकी व्यंजना कम है।

चन्द्रके प्रति

निशाकी नीरवता कर भग
गगनमें आते हो चुपचाप,
विश्वको देते क्या उपदेश
बताओ, हे राकापति, आप ?

सूर्यकी प्रखर रश्मियोंसे
जगत् सन्तापित होता नित्य,
उसे फिर शीतलता देना
निशापति, तेरा ध्येय पवित्र।

रकसे राजाओं तक सदा
एक-सा है तेरा व्यवहार,
प्रवर्द्धित होते हो हर रोज
सुधाकर, करते हो उपकार।

तुम्हें कहते हैं कवि सकलक
बडा निष्ठुर है यह व्यवहार,
किन्तु मुखकी उपमा देकर
किया करते हैं कुछ प्रतिकार।

मानवके प्रति

अरे मानव, तू अब तो देख
पलकसे ढपे युगल-पट खोल
अहर्निश बीत रहा है आज
समय तेरा सबसे अनमोल।

समझ जीवनमें इसका मूल्य
यही जीवनका जाग्रत् प्राण
इसे जो खोते हैं निष्काम
बने फिरते हैं वे म्रियमाण।

समयकी मधुर भावना साध
प्राण अपनेपर बाजी खेल
उतर पड रण-आँगनके बीच
देश-हित अपना देह ढकेल।

खिलाडी करना होगा खेल
छके वैरी-दल सहसा देख
बने प्यारा भारत स्वाधीन
नही हो पर-बन्धनकी रेख।

मिटा दे अन्धकार अज्ञान
करा दे सबको सच्चा ज्ञान
जुटा जीनेके साधन नित्य
कला-कौशलका ताना तान।

मिटा रोटीका व्यापक प्रश्न
बना भारतको शिखरारूढ
नही तो निश्चित ही यह जान
एक दिन देश जायगा बूड।

डॉ० शंकरलाल, इन्दौर

डा० शंकरलालजी काला बी० आई० एम० इन्दौर, मध्यभारतके उदीयमान हिन्दी कवि और लेखक हैं। आपकी रचनाएँ 'जीवनप्रभा' 'जैनमित्र' और 'जैनबन्धु' आदि पत्रोंमें प्रकाशित होती रही हैं। वर्तमानमें आप 'आत्मबोध' संस्कृत ग्रन्थका हिन्दी पद्यानुवाद कर रहे हैं। आप बालकोंके लिए ओजमयी सुन्दर रचनाएँ भी करते हैं। उदाहरण दिया जा रहा है।

आज़ादी

भोले भाले बालक आओ भारत मन्दिरके आधार
जीवनके तुम ही हो स्वामी तुम ही देश अरे साकार।
आस लिये हैं तुम हो पूतसे राष्ट्र-तारिणीके पतवार
तुम ही को अपने जीवनमें इतना करता हूँ प्यार।
सेनानी बन समर क्षेत्रमें तुमको ही लड़ना होगा
गोलीकी बौछारोंमें तुमको सब दुख-सा सहना होगा।
समय नहीं आता है बालक समय नहीं देखा जाता
जीने-मरनेके प्रश्नोंको कौन उपेक्षित बतलाता।
आओ आओ बालक वीरो आज़ादीका व्रत लें
कहीं रुकें ना कहीं मरें हम विप्लवके बन आज बढ़ें।
अस्थिर आज़ादी अपनी इसके बल सब देश बढ़े
आज इसी आज़ादीके दिन बोलो अब हम क्यों न लड़ें?
आज बन्धुओ नहीं हमारा देश रहेगा फिर परतन्त्र
जगतीके कण-कणमें फूँकें आज़ादी जीवनका मन्त्र।
झंडा ऊँचा करो देशका आज़ादी सब पायेंगे
वीर भूमिके बालक वीरो जीवनमें गुण लायेंगे।

आत्म-वेदना

मेरे कौन यहाँ पोछेगा आँसू, हा, अञ्चलसे ,
पारस्परिक सहानुभूति जब भगी हुई है छलसे ?
ममता मीसे यहाँ भला क्या, ईर्षा-वश हो करके ,
सुखका अनुभव यहाँ करें क्या कटु आहें भर-भरके ।
धर्म हमारा कहाँ रहेगा जब अधर्मने आकर ,
मानवताका नाश किया है पशुताको फैलाकर ।
जिधर देखिये उधर आपको दिखलाते सब दीन ,
वन-शोभा अब कहाँ रहेगी जब जग हुआ मलीन ?
पास पास करके हमने क्या कर पाया है पास ,
तिरस्कार अपमान उपेक्षा या कलुषित उच्छ्वास ?
पतझडके पश्चात् नियमत आती मधुर वसन्त ,
पर पतझड़के बाद यहाँपर आया शिशिर अनन्त ।

दोहावली

जीवनभर रटते रहे, हे चातक , प्रिय नाम ,
मैं तो कभी न ले सका, हा, प्रिय नाम ललाम ।१
करकी रेखा देखकर, मनकी रेखा देख ,
करकी रेखामे सतत, मनकी रेख विशेष ।२
निर्मोही बनना चहे, तू मोहीको पूज ,
मैल तेलसे धो रहा, हा, तेरी यह सूझ ।३
बैठ महलमें मूढ़ तू, करत पथिक उपहास ,
कबसे पतन बता रही, तेरी उठती साँस ।४

['चन्द्रशतक'से

बाबू श्रीचन्द्र, एम० ए०

बाबू श्रीचन्द्र जैन समथर राज्यान्तर्गत अम्मरपुर नामक ग्रामके निवासी हैं। बचपनसे ही आपको कवितासे प्रेम है। आपको करुण-रसप्रधान कविताएँ प्रिय हैं। आपकी अनेक कविताएँ जैन पत्रोंमें प्रकाशित होती रहती हैं। आप सुन्दर कहानियाँ भी लिखते हैं। कुछ लेख आपने 'जयपुर जैन-कवि' नामक शीर्षकसे लिखे हैं। आपकी कविताएँ मार्मिक और प्रसाद-गुणपूर्ण हैं। 'सामायिक पाठ'का आपने पद्यानुवाद किया है जो प्रकाशित हो चुका है। आपकी रचना 'चन्द्रशतक' प्रकाशित हो रही है। आपका कविता कहनेका ढंग बहुत सुन्दर है।

गीत

ये पागल मनकी आशाएँ
मेरी उत्कट अभिलाषाएँ।

गिरि-शृंगोंपर सरस कमल हों रस निकले रेणुके कणमें
विह्वलतामें बने सान्त्वना हो अमोद अपने चिन्तनमें।
यह जग-जर्जर जग निश्चल हो राग वेदनाके स्वरमें हो
पिपीलिकाकी रक्तलतामें रणभूमिका मृदुल सृजन हो।
मानव मात्र देव बन जायें सभी दीन वैभव-सुख पायें
हो ममत्व पाषाण-हृदयमें विषम गरल जीवन बन जायें।
अस्थिर जीवनके सौरभमें अक्षत अविनश्वर नित रत हो
लहरोंके नव सागर तरना विह्वल मानवको सम्भव हो।

ये पागल मनकी आशाएँ
मेरी उत्कट अभिलाषाएँ।

आत्म-वेदना

मेरे कौन यहाँ पोछेगा आँसू, हा, अञ्चलसे ,
पारस्परिक सहानुभूति जब भरी हुई है छलसे ?
ममता सीखें यहाँ भला क्या, ईर्षा-वश हो करके ,
सुखका अनुभव यहाँ करें क्या कटु आहें भर-भरके ।
धर्म हमारा कहाँ रहेगा जब अधर्मने आकर ,
मानवताका नाश किया है पशुताको फैलाकर ।
जिधर देखिये उधर आपको दिखलाते सब दीन ,
धन-शोभा अब कहाँ रहेगी जब जग हुआ मलीन ?
पास पास करके हमने क्या कर पाया है पास ,
तिरस्कार अपमान उपेक्षा या कलुषित उच्छ्वास ?
पतझडके पश्चात् नियमत आती मधुर वसन्त ,
पर पतझडके बाद यहाँपर आया शिशिर अनन्त ।

दोहावली

जीवनभर रटते रहे, हे चातक , प्रिय नाम ,
मैं तो कभी न ले सका, हा, प्रिय नाम ललाम ।१
करकी रेखा देखकर, मनकी रेखा देख ,
करकी रेखासे सतत, मनकी रेख विशेष ।२
निर्मोही बनना चहे, तू मोहीको पूज ,
मैल तेलसे धो रहा, हा, तेरी यह सूझ ।३
बैठ महलमें मूढ तू, करत पथिक उपहास ,
कबसे पतन बता रही, तेरी उठती साँस ।४

['चन्द्रशतक'से

श्री सुरेन्द्रसागर जैन, साहित्यभूषण

आपकी जन्म-भूमि ललितपुर (मैनपुरी) है और वर्तमान निवास कुरावली ।

आपकी शिक्षा मैट्रिक और साहित्यभूषण तक ही हुई है फिर भी कवित्वका बीज आपमें जन्मजात है । आपकी रचनामें प्राञ्जल भाषा, गम्भीर भाव और मधुर कल्पनाओंका सुन्दर सम्मिलन है ।

परिवर्तन

कहाँ वह हँसता-सा मधुमास ?
कहाँ वह स्वर्णिम प्रात विहान ?
स्वनका होता ताण्डव नृत्य
प्रात छाता तम-तोम महान् ॥

उषाकी मंजुल मृदु मुसकान
मुदित करती मानवके प्राण ।
दिशाओंमें अब हैं सुनसान
हुए शोकातुर मानव म्लान ॥

नीड़में विहग कूकते प्रात
और गाते थे सुन्दर राग !
कहाँ वह गए राग अविराम ?
खगोंने धारण किया विराग ॥

चिपटकर लता वृक्षके गात,
समझती थी अपनेको धन्य।
और सौन्दर्य-सिन्धुकी राशि,
समझती यौवन स्वीय अनन्य॥

किन्तु वे आज विरस कृश गात,
मधुरिमा हुई क्षीण अभिसार।
चिपटती नही वृक्षसे आज,
समझती यौवनको है भार॥

अहा! वह तरु छायायुत शीत,
पथिक जिसमें करते विश्राम।
मनो भव-दव-दाहोंसे तप्त,
आज अनुतापित हैं निष्काम॥

नयनमें था जो वीरोल्लास,
देखनेको अभिनव अभिचाव।
आज उनमें नीलमके सूत्र,
दीखते सचमुच हुआ अभाव॥

अहा! गोरेसे शिशु-मुख-हास्य,
मधुर करते थे हास्य विकीर्ण।
सहज बरबस पाहन उर तलक,
खीच लेनेमें थे उत्तीर्ण॥

उन्हींपर पीत-रंग मसि आज,
पोतती अपनी कीर्ति अपार।
भूल बैठे चंचलता हास,
विरस-सा उनको आज निहार॥

जगाएँ विपदाओं का घोर!
कर रहीं वरसा हैं घनघोर।
हुआ पीड़ित है जन-जन प्राण
दुखोंका नहीं कहीं है छोर!

हुआ भयत्रस्त प्राण है लोक
समझता पीड़ामय संसार।
यहाँ केवल जीनेका नाम!
हुआ है जीवन भी तो भार!!

अरे ओ परिवर्तन नृपराज!
किया प्रसरित अपना साम्राज्य।
तुम्हीं जग की उन्नति-अवसान
प्रदाता स्वीय तुम्हारे राज्य।।

अरे सुख-दुखके तुम करतार!
रीझते हो जिसपर प्रिय आप।
उसे करते हो श्री-सुख पूर्ण
और करते हो मोद-मिलाप।।

खीजते जिसपर हो तुम! आर्य
दिखाते उसको नाना दुख।
अरे! उसको ही तुम अभिशाप
छीन लेते उसके सब सुख।।

तुम्हारी सत्ता अहो महान्!
कभी लघु कभी विराटाकार।
तुम्हींसे तृण दिखाएँ वीर्य
कभी बनती प्रलय आकार।।

जहाँपर थल-अचल विस्तार,
वहाँपर लहराते हो सिन्धु।
और फिर सार्थक करने नाम,
स्वय तुम कहलाते हो सिन्धु॥

तुम्हें नहि व्रीडाका भय रच,
छद्मभेषोंसे रचते जाल।
धूल मिकता-युत कर मरु थान,
सुखा देते हो जलधि विशाल॥

विवर्तित प्रातर् ऊषा-काल,
कभी सध्यामय करके आप–
तमिस्राका देते हो रूप,
अहो! परिवर्तन हो या शाप?

अरे, तुम स्रजनहार, पर हन्त,
सर्व व्यापक हो अहो अनन्य!
जगत्-अवलम्बन! हे जग-दूर!
न कुछ हो, तुम सब कुछ हो, धन्य!

श्री ज्ञानचन्द्र जी जैन, 'आलोक'

श्री ज्ञानचन्द्रजी छिरियापन (झाँसी)के रहनेवाले हैं। वर्तमानमें आप स्याद्वाद-महाविद्यालय काशीके स्नातक हैं। आपका साहित्यिक क्षेत्रमें यह प्रथम प्रवेश है। आपकी रचनाएँ सरल और सुबोध होती हैं। आशा है भविष्यमें "आलोक"जीकी आलोकपूर्ण रचनाओंसे माता सरस्वतीका मन्दिर अधिकाधिक आलोकित होगा।

किसान—

भारत भूके भूषण स्वरूप
स्वर्णिम टुकड़े ये अल्प ग्राम।
जो इधर उधर वीरान पड़े
हैं कहीं बसे दो-चार धाम।१

×

ये ही हमको देते जीवन
ये ही हम सबके कर्णधार।
इन सबमें रहनेवाले ही
देते हैं हमको भवसार।२

×

ये हैं किसान जो दिन-दिन भर
करते रहते श्रम बेशुमार।
सिरसे एड़ी तक चूती है
जिनके तनमें नित स्वेद धार।३

गर्मीकी भीषण गर्मीमें
सहते दिनकरका तेज ताप।
भूखे-प्यासे हल हाँक रहे
जिनके दुखोंका नहीं माप।४

×

है नहीं पैरमें जूती भी
सिरपर टोपीका नहीं नाम।
उनपर कष्टोंका है प्रभाव
अवशिष्ट सिर्फ है चर्म चाम।५

×

पानी पीनेको इन्हें एक
मिट्टीका फूटा बर्तन है।
खानेको मिलते चार कौर
ऐसा बेढब परिवर्तन है।६

इनके बच्चे रोते-रोते—
भूखे ही भूपर सो जाते।
उठनेपर जल्दीसे नीरस
कोदोंकी रोटी खा जाते।७

×

है दुग्ध और घृतका सुनाम
जिनको सुनने तक ही सीमित।
रोटी खानेकी सिर्फ आश
इनको करती रहती प्रेरित।८

×

बस पाँच हाथका इनका घर
वह भी है कच्चा जीर्ण शीर्ण।
ऊपरसे छाया जहाँ फूस
है अङ्ग-अङ्ग जिसका विदीर्ण।९

×

उसमें रक्खा चूल्हा कच्चा
रक्खी है चक्की वही एक।
है पडी वहीं टूटी खटिया
काली हन्डी भी पडी एक।१०

×

होती है खुजली इन्हें खूब
पैरोंमें फटी बिमाई हैं।
ज्वरसे रहते ये सदा ग्रस्त
इसलिए कि भूखी नारी हैं।११

×

इतनेपर मुखियाकी बिगार
करनी पडती बेचारोंको।
पैसे मँगनेपर पड जाती
दो-चार जूतियाँ दुखियोंको।१२

×

वर्षामें इनका घर चूता—
सर्दीमे पडती खूब ओस।
गर्मीमें छप्पर फोड सूर्य-
पीडित करता पर नहीं जोश।१३

×

आता इनको, क्योंकि दरिद्र
चिन्तित होनेसे क्षीण काय।
बेचारे कर ही क्या सकते,
करते रहते बस हाय-हाय।१४

×

इस तरह दुखित, फिर भी, किसान
देते हैं हमको खूब अन्न।
पर हमें कहाँ इनका सुध्यान
क्योंकि, हम हैं अभिमान-छन्न।१५

×

रहते हम उन प्रासादों में—
अम्बर-चुम्बी जो हैं विशाल।
जिनके घर्षणसे लोक प्रकट
है चन्द्रराजका कृष्ण भाल।१६

×

पीनेको मिलता हमें शुभ
अन्नजल षट् रस मधुमय दूध ।
पोषक पदार्थ हम खाते हैं
जिनसे बढ़ता है खून खूब ।१७

×

वस्त्राभूषण सिरसे पग तक
करते रहते शोभित शरीर ।
बैठी रहती मानव समाज
इसलिए कि हम सब हैं अमीर ।१८

×

घर ठाठ-बाठ इनके सारे
तेरी ही हिम्मतपर किसान !
इनका सुख भी अवलम्बित है
तेरी ही छातीपर किसान ।१९

×

इनकी शोभा इनकी इज्जत
इनके सारे सुख अधिकार ।
तेरे तनपर तेरे मनपर
तेरे बलपर ही है निर्भर ।२०

×

उत्तुङ्ग महल अद्भुत विचार
तेरी ही बलपर होते हैं ।
तेरे पसीनेको पाकर ही
सुखकी निद्रामें सोते हैं ।२१

×

टकटकी लगाये दिनकर भी
तेरी हिम्मतको ताक रहा ।
तेरी ही बलको रे किसान !
संसार चकितसे झांक रहा ।२२

×

इसलिए उठो सोचो समझो
ओ मेरे जीवनधन किसान !
तेरे ही ऊपर अवलम्बित
गान्धीका होना मूर्तिमान ।२३

श्री मगनलाल जी, 'कमल'

आप एक उदीयमान प्रतिभाशाली कवि हैं। आपका निवास स्थान शाढौरा (ग्वालियर राज्य) है।

'कमल'जी बाल्यावस्थासे ही कवि-कर्ममें सलग्न हैं। अपनी अन्तर्वेदनासे प्रेरित होकर ही आप अपने कर्ममें प्रवृत्त होते हैं। यही कारण है जो "आहोंके है आघात, प्रिये" लिखनेके लिए आपकी क़लम सहज भावसे चल पड़ती है।

आशा है, एक दिन यह कवि-कलिका अपने सुवाससे साहित्यके उद्यानको अवश्यमेव सुवासित करेगी।

जौहरकी राख

१

आज हृदयमें प्यार कहाँ है ?
दलित, पतित, कुचले जीवनका ही सूना ससार यहाँ है।
आज हृदयमें प्यार कहाँ है ?

अत्याचार करेगा जो भी
अत्याचारी कहलायेगा,
शासक भी हो क्यो न जगत्‌का
पीडित दलसे दहलायेगा,
आहोंके शोलोमें बोलो यौवनका सौन्दर्य कहाँ है ?
आज हृदयमें प्यार कहाँ है ?

२

अरे इन्हीं अत्याचारोंसे
रगा हुआ इतिहास पड़ा है,

पग पग सन्देश दे रहा
कहाँ न्याय अन्याय लड़ा है
पग पगपर रोना ही है तो फिर पावन त्योहार कहाँ है ?
आज हृदयमें प्यार कहाँ है ?

३

उस पावन मेवाड़ भूमिपर,
अम्मायोंका प्यार पला था
राजपूत ललनाओंका जहँ
रूप और सौन्दर्य पला था
जिनकी थी ज्वाला-मालाएँ वहाँ आज प्रासाद नहीं है !
आज हृदयमें प्यार कहाँ है ?

४

कभी नहीं भूलेगा भारत
भरे बाग जलियानावाला
पापी घर भी डायरने जहँ
बहा दिया था खूनी नाला
उनके रक्त-बिन्दुओंसे ही लिखा गया इतिहास नहीं है !
आज हृदयमें प्यार कहाँ है ?

५

शासक वर्ग मगन रहता है
भाग्यहीन बदतर हैं फूटे
जिसे शृंखला समझा पागल
वह तो सब बन्धन हैं टूटे
मरघट कहते हैं हम जिनको वैसी बाहर राह नहीं है !
आज हृदयमें प्यार कहाँ है ?

ऊर्मियाँ

श्री लज्जावती, विशारद

श्री लज्जावतीजी समाजकी उन जागृत महिलाओंमेंसे हैं जो यथाशक्ति देशकी सेवा और साहित्यकी साधनामें सदा तत्पर रहती हैं। आप जब मेरठमें थीं तो वहांकी महिला-समितिकी मन्त्रिणी थीं और अब मथुरामें जहां आपके पति बा० जगदीशप्रसादजी ओवरसियर हैं, नारी समाजकी उन्नतिके कार्योंमें योग दान देती हैं। आप 'वीर जीवन' और 'गृहिणी कर्त्तव्य' नामक दो पुस्तकोंकी लेखिका हैं।

आपकी कविताओंमें विषयके अनुसार ही शब्दोंका चयन होता है, और भावोंमें गम्भीरता रहती है। वेदनाके भावोंको चित्रण करते हुए इनकी कविता विशेष रूपसे सजीव हो उठती हैं। 'फूल सुगन्धित तू चुन ले, शूलोंसे भर मेरी झोली' कितनी सुन्दर पंक्ति है!

आकुल अन्तर

मैं इस शून्य प्रणय-वेदीपर,
किन चरणोंका ध्यान करूं,
मृत्यु-कूलपर बैठी कैसे
अमर क्षितिज निर्माण करूं?

विश्वासोंपर बसा हुआ है,
जगके स्वप्नोंका संसार,
मन्वी, भाग्यकी अस्थिरताओं-
पर किसका आह्वान करूं?

श्री कमलादेवी जैन, 'राष्ट्रभाषा-कोविद'

आप प्रगतिशील विचारोंकी शिक्षित महिला हैं। पंडित परमेष्ठीदासजी 'न्यायतीर्थ'की आप धर्मपत्नी हैं। आपने धर्म, न्याय और साहित्यका खूब मनन किया है और कविताक्षेत्रमें विशेष सफलता प्राप्त की है। आपकी कितनी ही साहित्यिक रचनाएँ उच्चकोटिकी हैं। कवि सम्मेलनोंमें आपको अनेक स्वर्ण और रजत-पदक भी मिल चुके हैं।

आप न केवल अच्छा लिखती ही हैं, बल्कि कविताएँ भी बहुत जल्द बनाती हैं। इनकी रचनाएँ 'सुधा', 'कमला' आदि साहित्यिक पत्रिकाओंमें निकलती रहती हैं। अभी राष्ट्रीय आन्दोलनमें आप जेल-यात्रा कर चुकी हैं। आपकी कविताएँ अलंकारयुक्त किन्तु सुबोध होती हैं।

हम हैं हरी भरी फुलवारी

दुनियाके विशाल उपवनमें हृदयोंकी कोमल डालीपर
खिले हुए हैं सुमन सुमतिके, जग मोहित है जग लालीपर
शोभित विश्ववाटिका न्यारी, हम हैं हरी-भरी फुलवारी।१

सुरभि सर्व जगके उपवनमें महक रही सुगुणोंकी मधुमय
यह सन्देश सुनाती जगको, विचर रही होकरके निर्भय
हमसे ही जग शोभा सारी, हम हैं हरी-भरी फुलवारी।२

शायद समझ रही इससे ही, पुरुष जाति हमको अबलाएँ
हरी-भरी फुलवारी होकर, कैसे हो सकती सबलाएँ
यह सबलोंकी भूल अपारी, हम हैं हरी-भरी फुलवारी।३

पत्ते कोमल होनेपर भी जग-भरको छाया देते हैं
करते हैं उपकार जगत्का, पर न कभी बदला लेते हैं
तब फिर कैसे अबला नारी, हम हैं हरी-भरी फुलवारी।४

महक उठा फूलोंसे उपवन

छिटक गया तम तोम निशाका
ऊषा नटी उठ करके आई
मलयाये मलयाके वृन्द ने
कलिकाओंके सम्मुख आई।
उन्हें जगाने हो हर्षित मन महक उठा फूलोंसे उपवन।

ऊषाके मृदु आलिंगनसे
कलियोंने भी आँखें खोलीं
मानवका भय करनेके हित
आँखें ओसबिन्दुसे धो लीं।
मुस्काये फिर दोनों आनन महक उठा फूलोंसे उपवन।

दृश्य देख दोनों सखियोंका
नव प्रभातके रम्य पटलपर
सुरभित कलिकाओंसे मिलने
वायु, वेगसे आई चलकर।
करने कलियोंका आलिंगन महक उठा फूलोंसे उपवन।

अपना तन सुरभित करनेको
लिपट गई खिलती कलियोंसे
फिर गुंजित भ्रमरोंको देखा
हँसकर यह पूछा अलियोंसे—
'करते क्यों फूलोंका चुम्बन' महक उठा फूलोंसे उपवन।

विरहिणी

पिय न आये, पियूं कब तक,
यह निरन्तर धैर्य-प्याली,
व्यथित मनको सान्त्वना दूं,
किस तरह अब कहो आली।१

हृदय-दीपक हाथसे ढक,
चिर-समयसे जी रही हूं,
मिलनकी आशा रखे,
ममता-सुधा-रस पी रही हूं।२

किन्तु समता-सहचरी भी,
ऊबकर मुझसे किनारा,
कर गई, अब है न मुझको,
एक भी जीवन-सहारा।३

तप्त तनकी उष्म आहें,
हृदय - दीपकको बुझाने,
कर रही है यत्न भरसक,
आज इसपर विजय पाने।४

टिमटिमाता दीप यह,
बतला, सखी, कैसे बचाऊं,
आशका अब डाल अचल,
ओटमें कैसे छिपाऊं ?५

श्री प्रेमलता, 'कौमुदी'

'कौमुदी'जीका जन्म सन् १९१४ में दमोहमें हुआ। आप प्रसिद्ध जैन-कवि श्री प॰ मूलचन्द्रजी 'वत्सल'की सुपुत्री हैं। आपके पति श्री रविचन्द्र 'शशि' भी एक सफल कवि हैं। इसीलिए कविताकी ओर आपकी सहज और सुलभ प्रवृत्ति है। आपने संस्कृतका 'सामायिक पाठ' पद्यानुवाद किया है जो प्रकाशित हो गया है। आपकी कवितामें स्वाभाविकता है और सरलता भी। ये कविताका क्षेत्र व्यापक रखनेका प्रयास करती हैं।

गीत

मेरे नयनोंकी कुटियामें किसने दीप जलाये री
नीरव सुप्त प्राण मेरे सहसा किसने झनकाये री।

भावा सरिता जल-सा निर्मल
मधुर मन्द सुरभित मलयानिल

सजनि आज किसके बिन मेरे बीन-तार झनकाये री।

श्यामल रजनीके तारों-सी
घन-विद्युत्के मनुहारों-सी

उर नभमें किस तरल प्रतीक्षाके बादल घिर आये री।
मेरे नयनोंकी कुटियामें किसने दीप जलाये री॥

मूक याचना

देव, मैं बन जाऊँ अज्ञात।

शलभके पंखोंको छू-छू,
उन्हें कर-कर अमरत्व प्रदान,
दीप-लौके प्रेमी मुखपर,
सदा करवाऊँ जीवनदान।

उसीके सुखकी मंजुल छवि,
बनी इठलाऊँ निशा प्रभात।
देव, मैं बन जाऊँ अज्ञात।

किसीके आशापथकी धूल,
बनूँ, पथपर छितरा जाऊँ,
मिलन वेलापर प्रेयसिकी,
दूर जगमें बिखरा आऊँ।

विरहकी उत्सुकतामें डूब,
हँसूँ, झूमूँ पुलकित मधुगात।
देव, मैं बन जाऊँ अज्ञात।

श्री कमलादेवी जैन

आप जैन समाजके मान्यमान्य विद्वान् पं० शोभाचन्द्रजी भारिल्लकी सुयोग्य पुत्री हैं। काव्य रचनाके लिए आपमें जन्मजात प्रतिभा है जो समय और अनुभवके बराबर बढ़कर हिन्दी-साहित्य-सुवर्णकी अँगूठीका सुन्दर नगीना होगी। सत्रह वर्षकी वयमें उन्नत कल्पना और सरस शब्दोंके साथ सुन्दर भावोंको गूँथना आपके उज्ज्वल भविष्यका परिचायक है। आप संस्कृत और न्यायशास्त्रका विशेष अध्ययन करती हैं। आप साधारण विषयको भी भावोंकी पवित्रता द्वारा उज्ज्वल कर देती हैं।

रोटी

रोटी फूली देख तुझे मैं
फूली नहीं समाती हूँ
अपने मनकी बात सोचकर
मन ही मन हर्षाती हूँ।१

तू मेरे प्रिय भ्रात उदरमें
जाकर ऐसा रक्त बना
मातृभूमिके लिए समयपर
तन अर्पण कर दे अपना।२

पूर्ण लालसा होवे मेरी
यह वरदान माँगती हूँ
तेरे तप्त हृदयको शीतल
कर दे यही चाहती हूँ।३

पहले चारो ओर जहाँ
साम्राज्य शान्तिका था फैला,
वृद्धि नित्य पाती थी 'कमला'
ज्यो पाती है 'चन्द्रकला'।४

वहाँ दीन दुखियो भूखोका
आज विलखना सुनती हूँ,
भारतीय माँका सम्वोधन
'अवला' सुन सिर धुनती हूँ।५

नायक वनकर मेरा भाई
सवका शुभ्र सुधार करे,
देश-जातिकी करे समुन्नति,
अपना भी उद्धार करे।६

पथसे विचलित मेरा भाई
कभी नही होने पावे,
सज्जनता-रूपी साँचेमें
ढले, सदा ढलता जावे।७

इतनी कृपा करो, हे रोटी,
यह उपकार न भूल सकूँ,
जीवन वने वन्धुका उज्ज्वल,
कीर्ति श्रवणकर फूल सकूँ।८

निराशाके स्वरमें

स्वामी मिट गये अरमान।

कण्ठ शुष्क हुआ कर्ण क्या मम स्वर उत्थान
स्वामी मिट गये अरमान।
जोश अब तनमें नहीं है स्फूर्ति इस मनमें नहीं है
उचित अनुचितका नहीं है अब हृदयको भान
स्वामी मिट गये अरमान।
सूझता पथ ही नहीं है सोच लूँ पर मन नहीं है
खो चुका हूँ लुप्त मेरा हित-अहितका ज्ञान
स्वामी मिट गये अरमान।
लुट गया मैं आज स्वामी रखो मेरी लाज स्वामी
हुआ अब मेरे हृदयसे सौख्यका अवसान
स्वामी मिट गये अरमान।
प्यार धोखेसे जगत्ने किया कुचला निर्दयीने
मिला जीवनमें मुझे बस दुःखका वरदान
स्वामी मिट गये अरमान।
मिला है यह दर्द जगमें सह सकूँगा अब न कुछ मैं
आज पागल हो रहा हूँ अपथ्से अनजान
स्वामी मिट गये अरमान।
खोजता हूँ उस निठुरको चल दिया जो छोड़ मुझको
बिलखता हूँ आज पग-पग जो मेरे भगवान्
स्वामी मिट गये अरमान।
नाशके दुःखसे कभी बनता नहीं निर्माणका सुख
मानते हो प्रभो मेरा कीजिये कल्याण
स्वामी मिट गये अरमान।

श्री सुन्दरदेवी, कटनी

यद्यपि श्री सुन्दरदेवीने कविताके प्रांगणमें अभी हाल हीमें पदार्पण किया है, फिर भी अच्छी प्रगति कर ली है। यह कवितामें हृदयके उद्‌गार सीधे और सरल रूपमें इस प्रकार व्यक्त करती हैं कि इनके अनुभवकी गहराईका अनुमान लग सकता है। आपकी शैली आधुनिक और वेदना-प्रधान है।

आप कटनी निवासी स० सि० धन्यकुमारजीकी बहन हैं। आपका विवाह जबलपुरके ऐसे घरानेमें हुआ है, जो देशभक्ति और त्यागके लिए प्रसिद्ध है।

यह दुःखी संसार

आजका सहार कल जीवन बनेगा।

इस दुखी ससारमें जितना बने हम सुख लुटा दें,
बन सके तो निष्कपट मृदु प्यारके दो कण जुटा दें।
हर्षकी सौ ज्वाल छातीमें जलाकर गीत गायें,
चाहते हैं गीत गाते ही रहें हम रीत जायें।
नहि रहे यदि झोपडा सन्मार्ग तो फिर भी रहेगा,
आजका सहार कल जीवन बनेगा।

हम कि मिट्टीके खिलौने, बूँद लगते गल मरेंगे,
हम कि तिनके, धारमें बहते शिखा छू जल मरेंगे।
कौनसा वह बुलबुला-जल है न जो अंगार होगा,
नाशकी कटु किरणका युग-सूर्यसे शृंगार होगा।
धारमें बहना कहाँ तक सोचना यह भी पडेगा,
आजका सहार कल जीवन बनेगा।

जब समुन्दर बढ़ रहा होगा बड़ी भगदड़ मचेगी
और बड़वानल निगोड़ी सामने आकर नचेगी।
क्या बुझायेंगे कि 'फायर वर्क्स' मन मारे बचेंगे
मीत-रानीके यहाँ उस दिन बड़े दीपक जलेंगे।
आह! क्या दुर्दिन अभी वह और भारतमें बढ़ेगा

आगका सहार बन जीवन जलेगा।

यह प्रलयका एक दिन प्रतिदिन सरकता आ रहा है
काल मानव गीतियोंमें ही सही पर गा रहा है।
उस महासर्वस्वका हर प्राणसे कम्पन लहरता
मृत्युकी-सी शान्ति पाता एक क्षण जो भी ठहरता।
क्या कभी सम्भावना है दुष्ट दुर्दिन यह टलेगा

आगका सहार बन जीवन जलेगा।

जीवनका ज्वार

अब मैं ढूँढ़ूँ किधर प्रेमका वह चिरमिलित साथी तारा
अविरल बहती इन आँखोंकी रोके कौन प्रबल धारा?

दुख भरा था जिस प्यालेमें फूट गया वह मधु-प्याला
मेरे अन्तस्तलमें बहती भारी आग विकट ज्वाला।

जीवनका कर्पूर रहा जल आज प्रलयकी ज्वालामें
मरे पपीहा प्राण बसा था उन्हीं पियासे प्राणोंमें।

विकल प्रणयिनीका प्रमाण है ये टूटे मनके तारे
कैसे भार सहूँ जीवनका अन्तिम घड़ियोंके तारे।

श्री मणिप्रभा देवी, रामपुर

श्री मणिप्रभा देवीको ही इस बात का मुख्य श्रेय है कि उन्होंने वर्तमान जैनसमाजकी महिलाओंको कविता रचनेके लिए प्रेरणा दी और उनकी कविताओंको 'जैन महिलादर्श' नामक मासिक पत्रमें 'कविता मन्दिर'के अन्तर्गत छाप छापकर लेखिकाओंको प्रोत्साहित किया। आप प्रारम्भसे ही कविता-मन्दिरकी सचालिका है, जिसे योग्यतासे सम्पादित कर रही है।

आपने स्वय भी बहुत सुन्दर कविताएँ की है जिनमें ओज और माधुर्य दोनो ही गुण पाये जाते हैं।

आप सुकवि श्री कल्याणकुमार 'शशि'की धर्मपत्नी है।

सोनेका संसार

जीवनकी नन्ही नैया
डोल रही है जग-जलमें,
परिवर्तन हो रहे नये
नित जल-थल औ अचलमें।
निरख-निरखकर नया रूप
देखा मैंने पल-पलमें,
नूतन सागर बना एक
इस मेरे अन्तस्तलमें।
कम्पन-सा हो रहा प्रकट
है मेरे मन निश्चलमे,
लक्ष्य निकट है, लक्ष्य दूर
है मेरे कौतूहलमें।

यही सोच है कैसे जाऊँ
गहर सागरके उस पार
नाव बनाकर तुम बन जाओ
मेरी नैयाके पतवार।

× × ×

प्राचीने स्वर्णिमता पाई
मुझमें भी नव लाली आई
उपवनमें कलिका मुसकाई
जीवनके कोने-कोनेमें
हुआ मधुर संचार।

सुन्दर नव जीवनका मधुरस
'प्रभा' पूर्ण ममतामिलनका मग
पाया हुआ सबका सामरस
बन्धन विगत हुए विस्मित हो
खुला मुक्तिका द्वार।

मौन मन्द स्वरमें मुसकाया
मुझपर नव विकास बन छाया
बहुत खोजकर मैंने पाया
रहे सदा मधुमय हमारा
जीनेका संसार।

श्री कुन्थकुमारी, बी० ए० (ऑनर्स), बी० टी०

आप एक प्रतिभाशालिनी और विदुषी महिला हैं। आपने अंग्रेजी साहित्यके विशाल अध्ययनके साथ मातृभाषाके साहित्यका भी मनन किया है। देहली और पंजाब विश्वविद्यालयकी बी० ए० और बी० टी० परीक्षाओंमें आपने प्रान्तकी महिलाओंमें सर्वप्रथम पद और स्वर्णपदक प्राप्त किया था। इन्होंने अंग्रेजी-हिन्दीके अनेक अखिल भारतीय वाद-विवादोंमें भी प्रथम पारितोषिक प्राप्त किया है। आप दो वर्ष तक लाहौरके हंसराज महिला ट्रेनिंग कालेजमें बी० टी० श्रेणीकी प्रोफेसर रह चुकी हैं।

श्री कुन्थकुमारी हिन्दीमें लेख, कहानी और कविताएँ लिखती हैं। आपकी कविताओं और लेखोंमें रचनाका सौन्दर्य और कल्पनाकी कोमलताका दर्शन होता है। आप प्रसिद्ध शिक्षा-प्रेमी, देहलीके जैन कन्या-शिक्षालयके प्रमुख संस्थापक पंडित फतेहचन्द जैन खजांचीकी पुत्री और श्री लक्ष्मीचन्द्र जैन, एम० ए०की धर्मपत्नी हैं।

मानसमें कौन छिपा जाता ?

मानसमें कौन छिपा जाता ?

जीवनमें ज्वार उठा करके, मानसमें कौन छिपा जाता,
मेरे उन्माद-भरे मनको अनजानेमें बहला जाता !
मानसमें कौन छिपा जाता ?

दे क्षणमें सुख-दुखकी झाँकी, इस पल विराग, उस पल रागी,
उठती मिटती-सी पीड़ाको उलझा जाता, सुलझा जाता।
मानसमें कौन छिपा जाता ?

यदि रजत-सुधा बन रजनीमें मादकता लहराकर जीमें ;
जिसका माधुर्य तेज बनकर रवि-पथपर बिखर सिमट जाता ।
मानसमें कौन छिपा जाता ?

भ्रमरसे

भ्रमर, तू स्वाधीन उड़ जा ।

जिसने चंचल हृदयमें रमे तेरे प्राण भोले
इस मधुर संसारके मृदु तालपर तव प्राण डोले
वासुकी उन्मुक्त लहरोंने सुनहले पंख खोले
आज तू निर्बन्ध होकर विश्वमें सब ओर उड़ जा ।

तव हृदयके स्पन्दसे ही हो गयी प्रमुदित कली
सरस जीवन कर समर्पित धूलमें मिलने चली
मिट गई-सी कलीके उरमें मधुर मादक रली
ले मधुप पी आज जी भर, और अब स्वाधीन उड़ जा ।

नियतिके उरमें छिपा है नित्य परिवर्तन हमारा
नियम बन्धनसे छुटेगी क्या प्रणयकी मेघधारा
कठिन नीरस परिधियोंमें सरल सुन्दर प्रेम हारा
तू मनोरथके मनोरम पंख पा निश्चिन्त उड़ जा ।
भ्रमर तू स्वाधीन उड़ जा ।

श्री रूपवती देवी, 'किरण'

आप सी० पी०के सुप्रसिद्ध राष्ट्रीय कार्यकर्त्ता वावू लक्ष्मीचन्द्रजी फागुलकी विदुषी पुत्री हैं और जबलपुरके एक प्रतिष्ठित घरानेमें व्याही हैं। प्रतीत होता है कि आपका हृदय प्रकृतिके सौन्दर्यसे प्रभावित होकर कविताकी ओर प्रवृत्त होता है। आप सामाजिक विषयोपर भी अच्छा लिख लेती हैं।

यह संसार वदल जायेगा

प्रलय-राहुने ग्रसा चन्द्रमा,
हुई अमाकी निशा पूर्णिमा,
चन्द समयके वाद चन्द्र फिर,
निखिल ज्योत्स्ना छिटकायेगा,
यह ससार वदल जायेगा।

महानाशका निठुर प्रहर यदि,
भारतको गारत कर देगा,
जव निर्माता गान्धी जी हैं,
तो फिर क्यों न उदय आयेगा ?
यह ससार वदल जायेगा।

स्पष्ट होगी यह स्वर-लहरी
आत्मशक्ति जागृत हो जिससे
करे भेंट नव जीवन-ज्योती
नव संगीत विश्व गायेगा
यह संसार बदल जायेगा।

उस पार

निर्जन और शून्य-सा वन हो
दूर बहुत ही कोलाहल हो
पर निर्झरके अविरल रवसे
रहित नहीं वह प्यारा वन हो

ऐसा सुन्दर शुभ प्रदेश हो
हो अपना घर द्वार
दुनिया जगके पार।

मलय समीर जहाँ बहती हो
दुखित भी विषाद हरती हो
इस मायावी जगकी दूषित
पवन जहाँ नहिं आ सकती हो

ऐसी मन्द सुगन्धित प्यारी
मिलती रहे बयार
दुनिया जगके पार।

पर्वत - मालाएं हो फैली,
हो जिनकी मृदु वेल सहेली,
चन्द्र-सूर्यकी चचल किरणें,
करती हों क्रीडा लुक-छिपकर,

सुदृढ प्राकृतिक वही हमारा,
हो • अखड ससार,
छलिया जगके पार।

रवि शशि तारे नील गगनमें,
जलप्रपात तरु पृथ्वीतलमें,
पक्षिगणोका सुललित गुजन,
तरु टहनीका अभिनव वन्दन,

मन-रजन कर पावेंगी नित,
विमल प्रेम भडार,
छलिया जगके पार।

सखी, चल, छलिया जगके पार।

श्री चन्द्रप्रभा देवी, इन्दौर

आप विख्यात व्यवसायी रावराजा सर सेठ हुकुमचन्दजीकी पुत्री हैं। आपको कवितासे प्रेम है और इस ओर उनका सब तरहका प्रयास सफल भी हुआ है। आशा है आपकी प्रतिभा भविष्यमें अधिकाधिक विकसित होगी।

रणभेरी

तुम नवजवान हो ध्यान रहे
नस-नसमें साहस भान रहे
निज देश-धर्मकी शान रहे
जगतीका श्रेष्ठ विधान रहे
संगठन धाक जम जाने दो
रण-भेरी मुझे बजाने दो।

वीरो भारतका मान रहे
भारत वीरोंकी खान रहे
माता-बहनोंकी लाज रहे
सद्गुण पूरित सब साज रहे
पहलेकी स्मृति हो आने दो
रण-भेरी मुझे बजाने दो।

उज्ज्वल भारतकी शान तुम्हीं
अरमान तुम्हीं अभिमान तुम्हीं
दुखिया माताके प्राण तुम्हीं
सर्वस्व तुम्हीं उत्थान तुम्हीं
यह भाव पुन बिखराने दो
रण-भेरी मुझे बजाने दो।

श्री छन्नोदेवी, लहरपुर

जागरण

(१)

उठो क्रान्तिका गान हो रहा, निद्राका यह राग नहीं,
मची रक्तकी होली, देखो, यह वसन्तका फाग नहीं,

भीष्म ज्वालकी ये चिनगारी समझो पद्म-पराग नहीं,
यह मरणस्थल युद्धस्थल है, कुसुमित सुरभित बाग नहीं,

देखो उधर, व्योममें, कैसे विपदाओंके बादल हैं,
शान्तिपूर्ण अब रात नहीं, दुर्दिनके बजते पायल हैं?

(२)

देखो यह अडोल धरणीधर कैसा थरथर काँप रहा,
देखो, रक्तिम देह लिये रवि अस्ताचलको भाग रहा,

हो उद्दण्ड प्रचण्ड आलँसी मारुत भी फुकार रही,
उग्र रूप धर धरा अग्निके, आज उगल अगार रही,

सुनो, विश्व-विद्रोही बनकर विप्लवके हैं गाते गान,
महाप्रलयका आवाहन है 'उठो उठो, हे श्रेष्ठ महान्!'

नाविकसे

(१)

देखो नाविक मेरी नैया
धीरे धीरे खेना
मृदु भावाभोंका बोझा है
कहीं गिरा मत देना
थरथर यह मन काँप रहा है
कहीं गिरा मत देना
नैया धीरे-धीरे खेना।

(२)

भव-समुद्रकी अपरिमित बाधा
लहरों का तूफान
मद-मत्सरके भंवर भौंके
बीच बीच चट्टान
चट्टानोंसे बचकर चलना
कहीं न टकरा देना
नैया धीरे-धीरे खेना।

(३)

हाथ तुम्हारे काँप रहे हैं
इनको जरा थमाओ
छूट पड़े पतवार न देखो
पानी परे हटाओ
मुझे जरा उस पार लगा दो
तब विराम तुम लेना
नैया धीरे-धीरे खेना।

श्री मैनावती जैन

"वीत गये दिन उजड चुकी है बस्ती मेरी"—यह श्री मैनावतीके हृदयके स्वर हैं—अकृत्रिम और यथार्थ । अपने विषयमें वह लिखती है :—

"मुझे कवियित्री बनने या कहलानेका अभिमान नहीं, दावा नहीं, और इच्छा भी नहीं, परन्तु अपने इन असहाय पीडा-भरे शब्दोंको आँसूकी लडियोमें गूँथनेका कुछ रोग-सा हो गया है । यह मेरा रोग भी है और मेरे रोगकी सर्वोत्तम औषधि भी ।"

उनके जीवनमें दु ख वज्रकी तरह अचानक आ टूटा । १८ फरवरी सन् १९४२को इलाहाबादके पास खागा स्टेशनपर जो रेल-दुर्घटना हुई थी, उसमें इनके पति श्री विमलप्रसाद जैन, बी० कॉम०, देहली, स्वर्गवासी हो गये थे । उस समय इनके विवाहको ठीक एक वर्ष हुआ था । उसी दिनसे यह मनके गहरे विषादको आँसुओंकी धारामें बहानेका प्रयास कर रही है । इनकी कवितामें शब्दोंकी सुकुमारता और शैलीका सुन्दर समावेश भले ही न हो, किन्तु हृदयकी व्यथा अवश्य है ।

श्री मैनावतीका जन्म सन् १९२५ में इलाहाबादमें स्वर्गीय ला० शम्भूदयाल जैनके घरमें हुआ । 'विमल पुष्पाञ्जलि' नामसे आपकी धार्मिक कविताओंका एक सग्रह भी प्रकाशित हो चुका है ।

चरणों में !

अब छोडके जाऊँ कहाँ
चरणारविन्द तेरे ,
आई हूँ द्वारपर मैं,
कुछ पास है न मेरे ।

सब भक्त ही चढ़ाते
जल-गन्ध पुष्प अक्षत
नैवेद्य दीप पावन
फल धूप कर्म-दाहन।

मैं दीन हूँ अनाथी
पर भक्ति-भाव मेरे
अब छोड़के जाऊँ कहाँ
चरणारविन्द तेरे।

घन लौटते नहीं हैं
निष्फल निराश होकर
'मैना' पड़ी चरणमें
आँसूकी माल लेकर।

साथी सगा न कोई,
प्रियतम 'विमल' सिधारे
अब छोड़के जाऊँ कहाँ
चरणारविन्द तेरे।

श्री सौ० सरोजिनीदेवी जैन

सौ० सरोजिनीदेवीजी 'वीर' के प्रसिद्ध सम्पादक श्री कामताप्रसादजी की सुपुत्री हैं। आपका जन्म ता० १ सन् १९२८ को अलीगंज (एटा)में हुआ था। सन् १९४३ में आपने 'नोबल मिडिल'की परीक्षा प्रथम श्रेणीमें पास की थी, जिसमें द्वितीय भाषा—उर्दूमें आपको 'डिस्टिंक्शन' मिला था। इस भांति जैन समाजमें आप पहली सुशिक्षिता और कवयित्री हैं। सन् १९४९में आपका विवाह दि० जैन परिषद् कायमगंजके उत्साही समाजी युवक श्री सुरेशचन्द्रजीके साथ हुआ था। श्री सरोजिनीदेवीने भा० दि० जैन परिषद् परीक्षा बोर्डकी कई धार्मिक परीक्षाओंमें प्रथम श्रेणीमें उत्तीर्णता पाई है और पुरस्कार भी पाया है।

"जैन महिलादर्श"में आप बराबर सुन्दर लेख और मोहक कविताएँ लिखती रहती हैं। आपकी कवितामें स्वाभाविक गति है और आपकी सूक्तिमें मौलिकता है। प्रसिद्ध कवयित्री श्री मणिप्रभादेवीने लिखा है कि "सरोजिनीने कविता सुन्दर शब्दावलिमें गूंथी है—भावकी दृष्टिसे भी (उनकी कविता) काफी अच्छी है। (इन्होंने) डाली तथा कुसुमका बड़ा सुन्दर और शुद्ध साहित्यिक संवाद लिखा है। इनकी अब तककी रचनाओंमें यह सबसे श्रेष्ठ रचना है। सरोजिनी इसी तरह उत्तरोत्तर उन्नति करती रहें। (यह) धीरे-धीरे खूब विकसित होती जाती है।"

—जैनमहिलादर्श

गीत

मै सुखसागरकी एक लहर !

जो प्रति क्षण तट चुम्बन करने जाती हूँ आलिंगन भरने
पर तट ठुकराता पग-पगपर, पड़ते हैं अगणित दुख सहने

अनुभव उसका मुझको कटुतर !

निज तन देकर जो जग सिंचन करती हूँ बनकर आनन्द घन
इसपर भी तो स्नेह नही मिलता लगता नीरस जीवन

उससे परिचित मेरा अन्तर ।

तुम क्या जानो दुखकी रेखा तुमने सुख फैलाकर देखा !
आहत अन्तर ही समझ सकेगा ठुकराये अन्तरका लेखा !

तुम तक तो सीमित सुखसागर ।

मै अपनेको करती अर्पण तव सुख-चिन्तन करती प्रति क्षण
तुम ठुकराते मुझ प्यार नही होता सुवर्णमय-तन रज-कण

पीकर लहरी हो रही अमर ।

यह लहर-लहरकी दुख कम्पन कब मन्द पड़ेगी दिल धड़कन
होगा समाप्त तट निष्ठुरपन कब लहर-लहरका अनुमिलन ।

लहरीका दुख तटपर निर्भर ।

श्री सौ० पुष्पलता देवी कौशल, सिवनी, सी० पी०

आप समाजके प्रसिद्ध कार्यकर्ता, जैनधर्म विशारद बाबू सुमेरचन्द्रजी 'कौशल' बी० ए०, एल-एल० बी० प्लीडर सिवनीकी धर्मपत्नी हैं। आपका विवाह हुए १० वर्ष बीते हैं। आपकी बाल्यावस्थामें ही आपके पिता सवाई सिगई श्री खूबचन्दजी जबलपुरका स्वर्गवास हो चुका था। आपकी माता श्रीमती सुन्दरबाईने अपने अन्य दो पुत्रों सहित आपका सुलालन पालन वैधव्य अवस्थाका आदर्श पालन करते हुए किया है। माता-पिताके धार्मिक सस्कारोंका आपपर पूर्ण प्रभाव पड़ा है। इसलिए आपकी धार्मिक शिक्षण और सदाचरणकी ओर विशेष रुचि है। आप बगाल सस्कृत एसोसिएशनकी 'न्यायतीर्थकी' तैयारी कर रही हैं। तथा बम्बई परीक्षालयकी 'विशारद' पास कर चुकी हैं।

आपको साहित्यसे विशेष अभिरुचि है। और कभी-कभी कविता और लेख लिखा करती हैं। आपकी कविता तथा लेख "जैन महिलादर्श"में ससम्मान प्रकाशित होते हैं। "दर्श"के कविता मन्दिरमें आपको अपने लेखों और कविताओंपर प्रथम पुरस्कार प्राप्त हो चुके हैं।

भारत नारी

जाग जाग हे भारत नारी।

प्राचीमें अरुणोदय आया
अन्धकारका हुआ सफाया
तेरा समय आज है आया

जाग जाग हे भारत नारी।

सदियोंसे तू पिछड़ पड़ी है
तब जीवनका मूल्य नहीं है
अन्धकारमें पड़ी हुई है

जाग जाग हे भारत नारी।

तू जीवनको सुखी बनावे
चाहे जीवन दुखी बनावे
तुम्हपर है सब जिम्मेवारी

जाग जाग हे भारत नारी।

तू है शक्ति तू ही जगदम्बा
तू है विजया तू है रम्भा
उठ आगे आ छोड़ दासता

जाग जाग हे भारत नारी।

गीति-हिलोर

श्री गेंदालाल सिंघई, 'पुष्प' साहित्यभूषण

श्री गेंदालाल सिंघई, चन्देरी (ग्वालियर)के रहनेवाले हैं और श्री चम्पालाल 'पुरन्दर'के अनुज हैं। आपने १३ वर्षकी अवस्थासे ही कविता लिखना प्रारम्भ कर दिया था। आपकी भावपूर्ण रचनाएँ पहले जैन-पत्रोंमें प्रकाशित होती रहीं, फिर आपने 'नवयुग'के लिए विशेष रूपसे कविताएँ लिखीं। अब प्रकाशित नहीं कराते। इनका एक कविता-संग्रह और एक काव्य प्रकाशनकी प्रतीक्षा कर रहा है।

आपकी कविताके भाव सुबोध होते हैं, क्योंकि भाषा आडम्बरहीन होती है, और प्रेम-मूलक कविताएँ प्राय सभी सुन्दर हैं।

कभी कभी मैं गा लेता हूं

कष्ट कहींसे आ जाता है,
दिल दुखसे घबरा जाता है,
अन्तस्तलकी पीड़ाको मैं
गाकर ही सहला लेता हूं।

इस विस्तृत जगतीके पटपर
चित्र खिंच रहे नित नूतनतर,
नया न कुछ कहकर दृश्योंको
शब्दोंमें दुहरा देता हूं।

कभी-कभी आशा जा-जाकर
लौटी साथ निराशा लेकर,
बुरा नहीं इसको कहता हूं,
दोनोंको अपना लेता हूं।

कभी-कभी मैं गा लेता हूं।

बलिदान

जीवनका बलिदान मुझे दो
सुखमय जीवन-दान न दो।

आज न मन बहलानेको हम मृदु वीणा झंकार करें
इस जीवनका मूल्य मिलेगा आज मृत्युसे प्यार करें।
भूल रहा मानवको मानव पशुताका संहार करें
शोषण उत्पीड़नके बन्धन झटककर हुंकार करें।
'जीवनका उत्सर्ग करें' यह
प्रण दो मुझको प्राण न दो।

भक्तोंमें हो भक्ति स्वयं भगवान दौड़कर आते हैं
भक्त सगुणको निर्गुण औ' निर्गुणको सगुण बनाते हैं।
यदि भगवान मूढ़ रूठा आतंकको फैलाते हैं
तो विद्रोही भक्त आज उनका अस्तित्व मिटाते हैं।
भक्तोंने भगवान बनाये
भक्त मिले भगवान न दो।

अब विश्वका भाग्य हमारे मस्तककी इस रोलीमें
दीवाने बनकर मिल जायें दीवानोंकी टोलीमें।
जीवन नर-संहार मचेगा कफन-कठकी झोलीमें
जग-भरमें यह जगत बनेगा महानाशकी होलीमें।
सुखसे मुझको मर जाने दो
जीनेका अरमान न दो।

जीवन सगीत

जगतका जीवन ही सगीत।

उन्नति इसकी आरोही है,

अवनति इसकी अवरोही है,

कष्ट यातना क्लेश क्लान्ति ही है करुणाके गीत।

जगतका जीवन ही सगीत।

रहता दुखका स्वर वादी है,

आशाका स्वर सवादी है,

कष्ट कसक ही मीड मसक है दो हृदयोकी प्रीत।

जगतका जीवन ही सगीत।

खाली कभी भरी हो जाती,

भरी कभी खाली बन जाती,

कोमल तीव्र, तीव्र कोमल हो, यही प्रेमकी रीत।

जगतका जीवन ही सगीत।

श्री फूलचन्द्र 'मधुर', सागर

श्री फूलचन्द्र 'मधुर' दि० जैन महिलाश्रम सागरके मन्त्री श्री चौधरी रामचरणलालजीके सुपुत्र हैं। आपको बाल्यावस्थासे ही कवितासे रुचि है। यद्यपि आपकी शिक्षा मिडिल तक ही हुई है और अवस्था भी बाईस वर्षके लगभग है फिर भी आप बड़ी सरस कविता करते हैं। इनके गीति-काव्योंमें हृदयकी स्वाभाविक संवेदना होती है और प्रायः कविताका वातावरण अपार्थिव और उन्नत होता है।

आप राष्ट्र-कर्मी होनेके कारण जेल-यात्रा भी कर आये हैं। इसलिए इनके गीतोंमें मुक्तकी आवाज गूंजती है। आपने 'मानवमीत' नामक एक कविता-पुस्तक लिखी है जो प्रकाशनकी प्रतीक्षामें है।

टूटे हुए तारेकी कहानी : तारेकी जुबानी

था क्या आधार ?

गगनने मुझको गिराया
भूमिने मुझको ठुकराया
मध्यमें मुझको बसाने कौन था तैयार ?

था चमकता भाग्य मेरा
था निशापर राज्य मेरा
और अगणित मानवोंका था मुझे ही प्यार।

देख मुझको व्यथित मनसे
हँस रहे तारे गगनसे,
चन्द्र मुझपर हँस रहे हैं देखकर लाचार।

देखकर मेरा पतन यह
हृदयका मेरे रुदन यह
(कह दिया आलोचकोंने)
जो कहाते विश्व-विजयी, आज उनकी हार।

था क्या आधार?

गीत

छुप रहा जीवन तिमिरमें।
सजनि, ये क्षण-क्षण सिमटकर मिल रहे धूमिल प्रहरमें। छुप रहा०

छुप रही लाली क्षितिजमें, छुप रहा दिनकर गगनसे,
और छुपने जा रहे उन्मुक्त खगगण भग्न मनसे,
जो रहा अब तक यहाँ, सब बह गया इक ही लहरमें। छुप रहा०

जब हृदयको गीत भाया, भाव सब जिसपर लुटाया,
और अब तक जिन्दगीमें जो, सखे, था प्यार पाया,
शोक वह कुछ भी नही, सब रह गया पिछले प्रहरमें। छुप रहा०

वेदनाके गीत गाता विगतकी स्मृतिको सुनाता
बढ़ रहा हूँ शून्यमें मैं शून्यमें सुखको मिलाता
प्रिय अप्रिय क्या-क्या रहा यह सोचता पथमें ठहर मैं। चुप रहा

वेदनाके साथ मिलकर भावनाके साथ घुलकर
प्राप्त जो कुछ कर सका मैं वो सभीका प्यार बनकर
सब लुटाता जा रहा हूँ आज इस सूनी डगरमें।
चुप रहा जीवन तिमिरमें।

मैंने वैभव त्याग दिया है

जिसको है जगने ठुकराया उसको ही मैंने दुलराया
जिसको जगकी घृणा उसीको अब तक मैंने प्यार किया है।

जब जीवन पहचान न पाया किंचित् सुखमें पथ बिसराया
वैभवहीन भाव हो मैंने जगका कुछ उपकार किया है।

मानव अपना पथ बिसराये कुछ भूले-से कुछ भरमाये
मैंने सबसे जगमें पाये दुखका ही सम्मान किया है।

हुए स्वप्न वे विगत हमारे, त्याग सभी सुख साथ सिधारे
आज विश्वके निकट खुशीसे प्रस्तुत यह आदर्श किया है।

मैंने वैभव त्याग दिया है।

आज विवश है मेरा मन भी

पग-पगपर मेरे प्रतिबन्धन

हैं अन्तरमें भीषण क्रन्दन ,

अरे बँधी सीमाएँ उसकी अल्प जिसे विस्तीर्ण गगन भी । आज विवश है०

आह पतन यह कितना अपना ,

इससे भी कुछ ज्यादा सहना ,

किन्तु दुखी अन्तर का कोई नहीं आज सुनता रोदन भी । आज विवश है०

वे विजयी कहलानेवाले ,

हम हैं अश्रु बहानेवाले ,

आज परस्पर ऊँच-नीचका है क्यों जगमें सन्निकषण भी ? आज विवश है०

हम भी अब युगको अपनावें ,

मिटनेके अरमान जगावें ,

खोये अधिकारोंको पावें ,

अपना पथदर्शक कहता है, "अमर रहा कब मानव-तन भी" ?

आज विवश है मेरा मन भी ।

श्री 'रतन' जैन

कविताके क्षेत्रमें उन्नतिकी ओर तीव्रतासे कदम बढ़ानेवाले नवयुवकोंमें श्री रतनकुमार जैनका नाम विशेष रूपसे उल्लेखनीय है। यद्यपि आपका उपनाम 'रतन' या 'रत्न' नहीं है फिर भी आप अपनी कविताओंके साथ यही नाम छपवाते हैं।

श्री 'रतन' जैन जयसिंहनगर (सागर)के रहनेवाले हैं। और इस समय स्याद्वाद महाविद्यालय काशीमें अध्ययन कर रहे हैं।

यद्यपि आपके गीतोंमें वेदना और निराशाकी स्पष्ट छाप है किन्तु जीवनके निरीक्षणका दृष्टिकोण एकान्तवादी नहीं है। हमें आशा करनी चाहिए कि वह अपनी 'परिचय' शीर्षक कविताके अनुसार ही अपने कवि-जीवनका ध्येय बनायेंगे :—

'मैं कवि हूँ कविता करता हूँ मुरदोंमें जीवन भरता हूँ।'

मुझसे कहती मेरी छाया

सोच समझ पग धरना मगमें
काँटे फूल बिछे पग-पगमें
जीवनके उत्थान-पतनमें उलझ न जाय कहीं यह काया
मुझसे कहती मेरी छाया।

प्रिय वसन्तके मधुर रागमें
यौवन सरसिजके परागमें
भूल न जाना पथिक कहीं तू बहारोंकी ढलती छाया
मुझसे कहती मेरी छाया।

प्रणय-कम्पकी भीनी सिहरन,
मृगनयनीकी तीखी चितवन,
प्यार-भरी इन रातोंमें है सदा किलकती छलनी माया,
मुझसे कहती मेरी छाया।

मेरे अन्तरतमके पटपर

इन्द्रधनुषकी नवल तूलिका
सुख-दुखकी ले मृदुल भूमिका
विस्मृत जीवनके चित्रोंको करती रेखांकित है सत्वर,
मेरे अन्तरतमके पटपर।

शैशवकी बालारुण आभा
यौवनकी मदमाती छाया
रतनारे इन नयनोंसे है अश्रुबिन्दु छलकाती मृदुतर,
मेरे अन्तरतमके पटपर।

पुण्य-पापकी गा गाथाएँ
प्यार-भरी नूतन आशाएँ
नीरव निर्जन वन्य प्रान्तमें इठलाती है सरिता-तटपर,
मेरे अन्तरतमके पटपर।

पूछ रहे क्या मेरा परिचय?

मैं कवि हूँ कविता करता हूँ,
मुरदोंमें जीवन भरता हूँ,
जीवन-दीप जलाकर अपना प्राणोंका करता हूँ विनिमय।
पूछ रहे क्या मेरा परिचय?

जगमें फहरे यश-पताका
जन जन मनमें लहरे राका
किन्तु सदा ही भूखा सोना पेट बाँधकर अपना निश्चय ।
पूछ रहे क्या मेरा परिचय ?

गा-गा मेरे गीत मनोहर —
मुग्ध हुआ जग विस्मृत होकर
किन्तु यहाँ तो जीवन-भर ही रोना-ही-रोनेका निश्चय ।
पूछ रहे क्या मेरा परिचय ?

बतलाओ तो हम भी जानें

क्यों मुसकान-भरी हैं रातें
सजा-सजा दीपोंकी पाँतें
बिखरा देती भूतलपर नित मुसकानोंके दाने-दाने ।
बतलाओ तो हम भी जानें ?

ऊषाकी लाली अलकोंमें
सन्ध्याकी भीगी पलकोंमें
गगन रास चमकाकर, आती जाती मनहर कौन तराने ।
बतलाओ तो हम भी जानें ?

कुञ्ज निशामें क्यों दीवाली
क्यों वर्षामें बरसी काली
क्यों वसन्त ऋतुराजके पीछे, पञ्चमके क्यों मीठे गाने ।
बतलाओ तो हम भी जानें ?

श्री फूलचन्द्र, 'पुष्पेन्दु'

'पुष्पेन्दु'जी लखनऊके निवासी हैं। आप छै भाई हैं, जो सबके सब न्यूनाधिक-रूपमें साहित्यिक और कला-प्रेमी हैं। 'पुष्पेन्दु'जीमें स्वाभाविक प्रतिभा है। इनकी कविता मौलिक और अकृत्रिम होती है। वह अपने हृदयके भावोंको व्यक्त कर सकनेवाले शब्दों और उनके अनुरूप शैलीको सहज भावसे प्राप्त कर लेते हैं। उनकी सभी रचनाएँ परिस्थितियोंसे आलोकित हृदय-सागरके मन्थनका परिणाम हैं। उनके गीतोंमें ताज़गी और आँसुओंका सजल क्षार है।

जब वह ग्यारह वर्षके ही थे, तभी उन्होंने लखनऊके 'सफेदा आम'पर मौलिक रचना गढ़ ली थी जो पाठकोंके मनोरंजनके लिए नीचे दी जाती है —

लखनौआ सफेदा और लंगड़ा बनारसका
दोनों ही ये आममें शिरोमणि कहायो है,
लखनऊके सहसाह दूधसे सिंचायो जाय
ताहि केरि वंसज सफेदा नाम पायो है,
याहीसे लड़नेको बनारससे धायो एक
बीच ही में टाँग टूटी लँगड़ा कहायो है,
कहैं 'पुष्पइन्दु' दाने यत्न बहुतेरे कीन्हें
तबहूँ सफेदाकी नजाकत न पायो है।

स्मृति-अश्रु

विगतमें जो सो रही थी
काल-क्रमका डाल आँचल,
दूर होता जा रहा था
दृष्टिसे जो दृष्टि प्रति पल,

मैं जिस दुर्गम हिमागार
चाह था अब भूल पाया
आज धुँधली पड़ चली थी
जिस विकलकी क्षीण छाया।

आज कोकिल कूककर फिर
कह गई बीती कहानी
जागरित फिर हो पड़ी
संस्कारकी सत्ता पुरानी।

शान्त उरमें फिर लगा
उठने वही भीषण बवण्डर
मधु-गन्ध तुम भी चल
आये पुरानी याद लेकर।

अभिलाषा

मैं बना रहूँ जग बना रहे।
तारक-मणि-मण्डित नील गगन
नव तारोंका झिलमिल नर्तन
मन ही मे कह उठता है मन
'मेरे ऊपर यह रत्न-खचित सुन्दर वितान-सा तना रहे'।
मैं बना रहूँ जग बना रहे।

यह जग मधुर मुस्कान लिये
प्रगति जगका अभिमान लिये
किरणोंका कोष महान लिये
अमृतमय सुधा बहानेको यह सदा सुधाधर तना रहे।
मैं बना रहूँ जग बना रहे।

यह साध्य गगन सौन्दय प्रखर,
यह अचल हिमाचल शैल शिखर,
यह सरिताओंकी लोल लहर,
इनका रहस्य कुछ जान सकूँ, बस एक यही साधना रहे।
मैं बना रहूँ, जग बना रहे।

यह मित्र भला उस पार कहाँ,
यह मात-पिता-परिवार कहाँ,
यह चिर-परिचित ससार कहाँ,
केवल सबको सब पहचाने, बस प्रेम परस्पर घना रहे।
मैं बना रहूँ, जग बना रहे।

देव-द्वारपर

आज आया हूँ यहाँपर विश्वका विश्वास लेकर,
आज आया हूँ यहाँपर विश्व-भरकी आश लेकर,
पाद-पद्मोंमें तुम्हारे सर झुकाता जा रहा हूँ।
गुनगुनाता जा रहा हूँ।

आपको अपना समझकर वेदनाके द्वार खोले,
सब निवेदन कर चुका मैं, किन्तु तुम कुछ भी न बोले,
इस तुम्हारी मौनतापर मुस्कराता जा रहा हूँ।
गुनगुनाता जा रहा हूँ।

एक निर्धन भी, अरे! करता अतिथि-सत्कार कैसा,
विश्वपति यह फिर तुम्हारा है भला व्यवहार कैसा?
आज इस आश्चर्यमें दुख भी भुलाता जा रहा हूँ।
गुनगुनाता जा रहा हूँ।

झूलता-सा जा रहा हूँ वेदनाका भार अपना
झूलता-सा जा रहा हूँ आज मैं अपना निवेदन
हृदयके आवेशमें मैं कुछ सुनाता जा रहा हूँ।
गुनगुनाता जा रहा हूँ।

व्यथा

जागे आज व्यथाके भाग !
जो कविसे उत्पन्न हुआ है अब उसको अनुराग
जागे आज व्यथाके भाग।

हृदयहीनसे प्रीति लगाकर उसने था अब तक क्या पाया
ज्यों-ज्यों उसे पकड़ने दौड़ी त्यों-त्यों वह उससे कतराया
अब आनन्द अधिक आयेगा मिली भावसे आग
जागे आज व्यथाके भाग।

मेरे व्याकुल तप्त स्वरोंपर अम्बरादि बनकर वह आई
उग्र तपाशिखि भी मैंने शीतल मन्दाकिनी बहाई
कलकल छलछल ध्वनिसे गाया अपना व्यथित विहाग
जागे आज व्यथाके भाग।

कितने मानव मुझे प्राप्तकर इस जगमें बेमौत मरे
केवल कवि है जो मरकर भी तुझको जगमें अमर करे
कविके आँखोंमें पाता है तेरा अचल सुहाग
जागे आज व्यथाके भाग।

श्री गुलजारीलाल, 'कपिल'

आप आगरा कॉलेजमें एम० ए०के विद्यार्थी हैं। पिछले पाँच वर्षसे कविता, कहानी, लेख लिख रहे हैं। कविताओंके परिचय-स्वरूप वह लिखते हैं —

"जीवनके प्रति मेरा दृष्टिकोण सदैव वेदनामय रहा है। यद्यपि कुछ रूढ़वादी विचारक तथा समालोचक इस दृष्टिकोणको विदेशी तथा आधुनिक कवियों एवं नवयुवकोंका फैशन बताते हैं, किन्तु मैं जीवनके प्रति इस दृष्टिकोण ही को वास्तविक रूपमें शाश्वत मानता हूँ। क्योंकि मैं समझता हूँ, सुखके क्षण हमारे जीवनमें बहुत थोड़े आते हैं और उनका कार्य भी हमारी कामनाओंको विकृत करना ही होता है। किन्तु दुख अथवा वेदना हमारे जीवनके चिर-संगी हैं और वे ही ज्ञात अथवा अज्ञात-रूपसे हमारी जीवन-धारामें निरन्तर विद्यमान रहते हैं। अत मैं उन्हींको अत्यन्त मूल्यवान् समझकर सदैव अपनाता रहा हूँ।"

विश्वका अवसाद हूँ मैं

विश्वने कब मुझे चाहा,
कब मुझे उसने सराहा,
सह चुका हूँ दु ख अति, क्या और भी सहता रहूँ मैं? विश्वका

जन्मसे ही हूँ अभागा,
भावनाके साथ जागा,
इसलिए रोया बहुत, क्या और भी रोता रहूँ मैं? विश्वका

झुलस अन्तर गया मेरा,
शून्यताने मुझे घेरा,
तड़पता औ' भटकता जैसे रहा वह ही रहूँ मैं? विश्वका

शान्तिसे मैं रह न पाया
जन्म भर सुखसे बिताया
मैं चुका जो सह चुका अब किसलिए, क्यों क्या कहूँ मैं ?
विषयका अवसाद हूँ मैं।

रुदन या गान

प्रिय यह रुदन या गान ?
प्रकृतिका यह क्रम निरन्तर
चल रहा अनजान !

जिसमें नव-चेतना थी
क्रान्तिकी उत्पत्ति करता
हर्षसे उन्मुक्त हुआ
रवि बढ़ रहा द्युतिमान।

किन्तु यह सन्ध्या सुहासिनि
म्लान क्यों बनकर उदासिनि
श्रान्तसे मिल रिक्त-उर
है भर रही अज्ञान !

उच्च के शिखि-मेघपीको
उडुगनोंके हारसे जो
शशि भ्रमण करता हुआ
क्या था रहा सप्राण ?

हाय यह क्या क्यों भिखारी
विरह मय उषा दुखारी
मन्द स्वर्णसि बहाती
नीर मधु मयान !

श्री हीरालाल जैन, 'हीरक'

आप स्याद्वाद-महाविद्यालय काशीके विद्यार्थी हैं। छायावादी ढगके गीत लिखनेका प्रयास करनेपर इनके भाव जरा दुरूह अवश्य हो जाते हैं, मगर फिर भी कविताकी ओर स्वाभाविक प्रवृत्ति और हृदयमें भावुकता होनेके कारण भविष्यमें आप अच्छी रचनाएँ करेंगे, ऐसी आशा है।

प्राण, क्यों म्रियमाण ऐसे ?

साधनासे शून्य पथमें भ्रान्त और उदास कैसे ?

विगत जीवनमें दिया है पूर्ण आलम्बन सहारा,
सुप्त जागे सुन विपची गानका स्वर स्वान्त प्यारा।
क्यो हुए निस्तेज पथमें म्लान और निराश ऐसे ?

वीर गाथाएँ अभी भी व्यक्त-स्वरमें गा रही हैं,
पूर्वका इतिहास सम्मुख कह हृदय अकुला रही हैं।
कह रही, क्यो आज जीवनमें कलङ्क प्रयास ऐसे ?

विश्वका निर्माण तेरे अजय पौरुषपर हुआ है,
नरकमें भी शान्ति-रसका पान मदिरा-सा हुआ है।
क्यो बने दौर्बल्यमय फिर मोहके आभास ऐसे ?

जग उठो, जग, नील नभपर सुकृतिसे बन शुभ्र तारे,
चमचमाओ जगमगाओ नष्ट कर तम-तोम सारे।
गई वेला, हाथमें आना कठिन, नि श्वास कैसे ?

देखा है

अवनि और अम्बरके ऊपर मार-संहार मचा देखा है !

अपनी-अपनी भाषाओंपर, जीवनकी अभिलाषाओंपर
इस मधुर वैभवके ऊपर, मायावी दुनियाके ऊपर
एक समयमें अकस्मात मैंने वज्रपात होते देखा है !

देकर प्राण प्राणको लेने सजन महीतल निर्जन करने
अपनेपनका वर्जन करने पर-अनुपाका मर्दन करने
राजाओंका नवापन भी वर्तमान युगमें देखा है !

जिसे चाहते हम लेनेको उसे न चाहें हम देनेको
बीच-बीचमें फूट डालकर बड़ी-बड़ी 'स्कीम' बनाकर
करते हैं अन्याय हमीं खुद, विषम न्याय ऐसा देखा है !

हमें लूट फिर भी कहते हैं 'भाई' न मुखसे अरे निकालो !
विषम यातना सहा न चाहो विष खा लो जीवन दे डालो
ऐसी तरहका अनुशासनपर शासन हा मैंने देखा है !

जन अपहरण हमारा करते न्याय-नीति अवलम्ब न करते
विषम हितैषी-मनमें फिर भी लेश चित्त भय भी ना करते
सदा चाहते कोप अमर हो ऐसा राजासन देखा है !

प्रजा मरे चाहे दुख भी हो कभी स्वार्थमें नहीं कमी हो
शासन सत्ता रहे हमारी नहीं देशमें शान्ति रही हो
ऐसी दूषित अभिलाषाओंपर शासन-जीवन देखा है !

राजा-प्रजा जहाँ दोनोंका नहीं प्रेमसे वास रहा है
राजाओंका नहीं परस्पर प्रेमपूर्ण व्यवहार रहा है
वहाँ शान्ति भी कभी न होगी नियम अचल मैंने देखा है !

सीकर

श्री ईश्वरचन्द्र, बी० ए०, एल-एल० बी०

अर्चना

ओ, वीतराग पुनीत,
देव तुमसे ही अलकृत मुक्तिका सगीत।
अमानिशिके गहन तमको
भेद ज्योतिर्मान !
रश्मि रूपसियाँ सरस, कोमल,
चपल गतिमान !
लोल लहरोंपर लिखे निर्वाणके मृदु गीत।
ओ, वीतराग पुनीत !

प्रेम-सागरके अतल तल
के मृदुल उपहार,
पूर्ण राग विरागके
ओ, भव्य जयजयकार !
आत्म-परिरम्भक, तुम्हींसे बन्धनोंकी जीत।
ओ, वीतराग पुनीत !

दिव्य-ध्वनि, ओ, दिव्य-द्रष्टा,
अमित सुख सन्देश !
दीप्त दीपक ज्ञानके
जाज्वल्यमान अशेष !
भव्य मानवके भविष्यत, वर्तमान, अतीत,
ओ, वीतराग पुनीत !

श्री अनूपचन्द्र, जयपुर

मेरा उर आलोकित कर दो

बिन्दु-बिन्दु कर रिक्त हुआ घट
फिर जीवन मदिरासे भर दो।

सघृतिका कोमल कठोर तन
प्राण स्वर्ण-आभासे उज्ज्वल।

मेरे उरके अन्धकारको
अपना पुण्यालोक सत्वर दो। मेरा उर

पलकोंके पथपर चल पुलकित
स्वयं अमरता हुई अवतरित।

मम उरके पंकिल सत दलको
विमल हास्य भी मंजुल भ्रमर दो। मेरा उर

नीलमके चंदवेके नीचे
मृदु मृदु रविके स्वर्ण मरीचे

मिथ्या अकिंचनता धुन्धीमें
जीवनका चंचल स्वर भर दो। मेरा उर

मिलन प्रतीक्षामें छलछलकर
वसुधा धारोंमें सौरभ भर
(पलक-प्रदीप दिखाती पथमें)

देखि प्रतीक्षाकी प्यासीको
मधु पावसका फिर निर्झर दो।

दो जीवनका स्पन्दन स्वर दो
मेरा उर आलोकित कर दो।

श्री साहित्यरत्न पं० चाँदमल, 'शशि', जयपुर

'प्रण, दे प्राण निभायेंगे'

वार-वार उठ कहती हमको अन्तरतमकी मूक पुकार ,
'अब हम तुझसे उऋण बनेंगे, दे निज जीवनका उपहार ,

आई यह वेला वर्षोमें अपनी साध पुरायेंगे ,
तेरे हम आदर्श वाल, माँ, प्रण, दे प्राण निभायेंगे।

भ्रमवश अपने समझ न तेरा आज भले कर लें अपमान ,
पर वह दिन दूर न जव होगा तुझको प्राप्त जगत्-सम्मान।

भूले-भटके सभी एकमत हो पथपर आ जायेंगे ,
गायेंगे जय-गीत तुम्हारे, प्रण, दे प्राण निभायेंगे।

तेरा और हमारा नाता, जन्म-जन्मसे वना हुआ ,
इस नश्वर तनकी नस-नसमें तेरा ही स्वर भरा हुआ।

पृथक् न हो सकते तुझसे, सुत तेरे ही कहलायेंगे ,
तेरी रक्षा-हित सव, मात , प्रण, दे प्राण निभायेंगे।

श्री सागरमल, 'भोला'

जग-दर्शन

[illegible] का अद्‌भुत [illegible] देगा।

[illegible] जब [illegible] है
और भी जब तक [illegible],
जिन्दगी [illegible] होकर
दुख भरी [illegible] रहेगी?
आज क्षण-क्षण [illegible] देगा।

आज सदियाँ पुरानी
अनल-लय मैंने सुनी है,
आहकी निःसीम साँसें
एक उँगलीपर गिनी हैं,
प्रति हृदयकी बीन में एक चुभता तार देगा।

शान्ति तो मुर्दा जगत्की
भ्रान्तिकी केवल पिपासा,
थी कभी मेरे हृदयमें
स्वप्नकी यह क्षणिक आशा,
अब सुकोमल फूलको काँटों-भरा लाचार देगा।

जिस हृदयमें था अँधेरा
हो न पाता था सवेरा,
कायरोंका एक घेरा
पापका दुर्दिन बसेरा,
अब उसीमें क्रान्तिका फूला-फला संसार देगा।

श्री माधुलाल, सागर

पथिकके प्रति

निराले किस पथपर अनजान
मनोंके ले करके अरमान
चला क्या जीवन-पथकी ओर
लिये नव स्वप्नमयी मुसकान।

सुना है स्वर-मन्तरके राग
मगर तू रहना सदा विराग
उठाते मादक भरी हिलोर
सहलाकर मोहक तीखे बान।

मचा है युग-व्यापी संहार
उछलते नभ-चुम्बी आकार
खूनी चिनगारी विकराल
विमुख मत होना औ अनजान।

पथिक मन होना कभी हताश,
देखकर जुल्मोंकी बौछार,
जगाना पावन-ज्योति नितान्त,
ध्येयपर हो करके कुर्बान।

कुचलना कटक कुलिश कुठार,
धारना मणिमय मुक्ता-हार,
सरल कर जटिल समस्या-जाल,
गुंजाना गुण-गण गरिमा-गान।

क्रान्ति कर गूंजा तीव्र हुँकार,
पतनमें ला दे शान्ति अपार,
अवनिपर बिखरे कीर्ति-पराग,
रचा दे नूतन सृष्टि-विधान।

मेरी चाह !

मेरी सदा रहे यह चाह।
धर्म-जाति हित मरना सीखूँ
पर-सेवा हित जीना सीखूँ
रखूँ देशकी चाह
मेरी सदा रहे यह चाह।१

बिछड़ोंको मैं गले लगाऊँ
पिछड़ोंको मैं आगे लाऊँ
दिलमें आनँद मान
मेरी सदा रहे यह चाह।२

भूखोंको मैं तृप्त कराऊँ
प्यासोंकी मैं प्यास बुझाऊँ
करूँ दयाका दान
मेरी सदा रहे यह चाह।३

दुखियोंका दुख हरना सीखूँ
दीनोंको धन देना सीखूँ
रखूँ सबका मान
मेरी सदा रहे यह चाह।४

कुरीतियोंको दूर भगाऊँ
शिक्षाका विस्तार कराऊँ
मेटूँ सब अज्ञान
मेरी सदा रहे यह चाह।५

श्री केशरीमल आचार्य, लश्कर

तेजोनिधान गाँधी महान् !

तेजोनिधान गांधी महान् !

गौरव-गिरिके शेखर-स्वरूप ,
बल प्रकट आत्मके मूर्ति रूप ,
हो क्षीणकाय, गरिमा-प्रधान ,
चिर-भाषित त्याग विभूतिमान ,
तेजोनिधान, गांधी महान् !

हो जग-भूषण आराधक भी ,
आराध्य तुम्हारा ज्ञान-ध्यान ,
है विश्व मानता देव-तुल्य ,
चालीस कोटि तन एकप्राण ,
तेजोनिधान, गांधी महान् !

माताकी अचलमे आये ,
पा दिव्य रूप सत्त्वप्रधान ,
सेवासे सिंचित कर डाले ,
लघु जीवन भी जगके महान् ,
तेजोनिधान, गांधी महान् !

निष्किंचन होकर भी तुमने
जगसे ममता नहिं छोड़ी है
करते रहते हो प्रतिक्षणमें

भारत-माताका एक ध्यान
तेजोनिधान गाँधी महान्!

ध्रुव सत्य अहिंसाके पुटमें
है अति विशुद्ध जिसकी काया
परिपूर्ण भरा जिसके भीतर

कंचन-सम निर्मल शुद्ध ज्ञान
तेजोनिधान गाँधी महान्!

यह सुधा-स्रोत स्रावित होकर
जनगण-प्रवाहमें वाहित हो
प्रथमसे अन्तिम जनम तक

दे साथ पारसाका प्रमाण
तेजोनिधान गाँधी महान्!

श्री कौशलाधीश जैन, 'कौशलेश'

भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र

भाषाके भण्डारमें, भूषण भरे अनेक,
बिन्दु भारती भालको, भारतेन्दु भी एक।१

महिमें यो महिमा रही, कविनु माँहि हरिचन्द,
तारागन विच गगनमें, गन्यो गयो जिमि चन्द।२

तेरी कविता-कौमुदी, कवि-मन कुमुद प्रमोद,
रसिक चकोरन चित चढ्यो, चितवत सहित विनोद।३

सरस रहे सरसिज सरिस, साहित सरहिं सुजान,
मन मधुकर मातो भयो, कविता-मधु कर पान।४

ऋतुराज

कुंज लसें ललितान लतान मनो हरितान वितान सुछाजे,
फूलनके चहुँ ओरन तोरन शब्द विहगन बाज न बाजे,
है रवलीन अलीननकी अवली ज्यो भली विरदावलि गाजें,
राजके साज सुमाज कै आजु बने ऋतुराज समाज विराजें।

दीप-माला

नीति रीति प्रीति पूर्ण जीवमें गई
झूठ लूट फूट राज्यमें समा गई।

ईति भीति दूर मन्द-मन्दता गई
भव्य हिन्द-भूमि दीपमाल आ गई।

मोह हार मानिके मरी मया गई
रम्य दीप-ज्योतिकी छबी सुहा गई।

वर्द्धमान वीर वीर भाव भा गई
नम्रता उन्हें करें प्रपूर्ण मैं गई।

पंडित चन्द्रशेखर शास्त्री

भक्ति-भावना

प्रभूके चरणोमें हम सर झुकाये वैठे हैं ,
उन्हींसे लौ है लगी लौ लगाये वैठे हैं।

सुनें या न सुनें यह तो उन्हीकी मर्जी है ,
हमें तो धुन है लगी, धुन लगायें वैठे हैं।

हमारे ऐवो-हुनर सव है उनकी नजरोमें ,
दिखाई दें न दें, नजर जमाये वैठे हैं।

सुनेंगे कैसे नही, यह भी कही खूब कही ,
जव कि यॉं तनको लगी, तन रमाये वैठे हैं।

जो देते ज्योति हैं सव सूर्य चन्द्र तारोको ,
उन्हींसे आश है, आशा लगाये वैठे हैं।

श्री सूरजभानु, 'प्रेम'

किनारा हो गया

नाम जो पस्तीमें बालातर हमारा हो गया
जिस तरह पानी कुएँका तहमें खारा हो गया।
कौमकी बिगड़ी हुई हालतका नक्शा देखकर
जख्म दिलमें पड़ गये दिल पारा-पारा हो गया।
रश्केमह फुर्कतके धोखोंसे जिगर भी बस चुका
हो गये बर्बाद गर्दिशका सितारा हो गया।
दिलमें अब इस तरक्कीसे हो गई कुछ-कुछ बहार
भर गये जख्म वे पौधा गुल हमारा हो गया।
'प्रेम' इस गहरे बहरमें कौमकी किश्ती पड़ी
आ लगी जिस जगहपर उस जा किनारा हो गया।

विचार लो ?

आपसके द्वेषसे ही गौरव विलीन हुआ
निज सभ्यताको निज धर्मको विचार लो ;
और जब आओ तब आओ अधिकारपर
अपने पुनीत जिन-धर्मको विचार लो
धारो क्यों न पौरुष प्रबल अमित साहसका
अपनी महात्माके मर्मको विचार लो
फूटको हटाओ और प्रेम करो आपसमें
उन्नतिका मार्ग शुभ कर्मको विचार लो।

श्री बाबूलाल जैन, 'अनुज'

वेदना

अलस इन प्राणोंमें अनजान
मूक भावोंका मधु संगीत।
फूंक देता सुखमय चुपचाप
वेदनाका सखि, निर्मम गीत।१

सजनि देखा जिन आँखोंमें
स्वर्ण स्मृतिमें मधुर प्रभात।
देखतीं वे ही बरबस आज
भयावह भीषण काली रात।२

×   ×

टपकता ओठोंमें उल्लास
सुखावह करता नयनोन्मेष।
चार दिन फिर परिवर्तन-से
देखता हूँ क्लेशोंपर क्लेश।३

न जाने क्यों मानसमें हूक
उठा करती बन हाहाकार।
विश्वमें लख अन्यायी जीत
जाग उठता है पापाचार।४

गगनचुम्बी सुन्दर प्रासाद
जहाँ होता था सुखदविहार।
प्रकृतिका परिवर्तित सुख वहाँ
उलूकोंके मिलते घर द्वार।५

×   ×

न जानें वे सुखके दिन कहाँ
लुप्तसे हो जाते अज्ञात।
चपल चपला सा वैभव लोल
स्वप्न माया बन जाता प्रात।६

चीर्ण चिर सोसरिर्तोके वस
बड़े बनिकोंके हर्म्य अपार।
उन्हींमें रोगीके बिन हाय
मचा बच्चोंका हाहाकार।७

चित्र-मालक भी कृषक महान
बनिकका तुम पर अत्याचार।
बैल बरबस हल आँखोंसे
अश्रुकी बहती भर-भर धार।८

× ×

हाय रे कुचित कार्य विकराल
तुम्हारी ही भीषण चितवन।
लील लेती है सबके प्राण
मचाकर मानसमें क्रन्दन।९

क्षणिक सुन्दरता हास विलास
क्षणिक उत्पीड़न विह्वल श्वास।
प्रलयका भ्रमता देख विकास
मृत्यु क्षणिक करती है हास।१

सृजनमें मिलता है संहार
प्रलय बच्चोंका विकट प्रहार।
क्षितिजपर कंकालोंका भार
यहाँ करती नित कोकिल मार।११

× ×

दुःख तब यह निष्फल संसार
खेलता सुख सबके उस पार।
जिसे तू खोज रहा भर हार
शान्ति वह मिलता है सुखसार।१२

श्री साहित्यरत्न पं० हीरालाल जी, 'कौशल'

कैसे दीपावली मनाऊँ ?

(१)

समर सघन घन घूम रहे हैं,
यान भूमि-नभ चूम रहे हैं,
टैंक, गैस गन झूम रहे हैं,
किस विधि हत्याकाण्ड मिटाऊँ ?
कैसे दीपावली मनाऊँ ?

(२)

देश गुलामीमें जकड़ा है,
वैर फूटका पाँव अड़ा है,
मरणासन्न समाज पड़ा है,
कहो कौन रस घोट पिलाऊँ ?
कैसे दीपावली मनाऊँ ?

(३)

वीर मार्ग अब छिन्न हुआ है,
सब पन्थोंमें मचा जुआ है,
गहरा अति विद्वेष कुआँ है,
क्योंकर खींचातान मिटाऊँ ?
कैसे दीपावली मनाऊँ ?

श्री सिंघई मोहनचन्द जैन, कैमोरी

परोपदेश कुशल

१ था प्रभातका समय मनोहर पवन सुरीली थी चलती।
कम्प्र कली प्रति लक्षित मुदित मन रविकिरणोंसे थी खिलती॥
चमक चक माता अनूप सुत वे नभमण्डलमें छाये।
चिटपीसर वे विहंगवृन्द कलरव करते बहु मन भाये॥

२ कल-कल करती सुन्दर सरिता तरल मन्दगतिसे बहती।
कथा मुग्ध सुत उसके तटपर मीनों निरखत हो रहती॥
इसी मनोरम भूमि भागपर फिरती थी डोली-डोली।
प्रेम-भरी गम्भीर केकडी निज सुतसे बोली बोली॥

३ तरल पन्थगामीके सबही चलचल सुलक्षण पाते हैं।
सरल चाल है सब सुखदायक नीतिवान् बतलाते हैं॥
इससे मैं समझाती तुमको, चलो चाल सीधी प्यारे।
मिले बड़ाई तुम्हें सब कहीं शीतल हो मेरे तारे॥

४ माताके सुन वचन पुत्र यों हँसकर बोला मृदु बानी।
सादर है स्वीकार मिली जो सीख मुझे जननी स्यानी॥
लेकिन एक विनय है मेरी नहीं एक मेरा कहना।
सरल चाल चल करके मुझको सिखला दो सीधा चलना॥

५ सुन करके यह उत्तर सुतका उसे न सूझा कोई उपाय।
अपनी टेढी चाल छोड़ वह चल न सकी क्षण-भर भी हाय॥
पर उपदेश कुशल होकर जो स्वयं नहीं कुछ कर सकते।
उनकी होती दशा यही है लज्जित ही वे चुप रहते॥

श्री दुलीचन्द, मुंगावली

पैसा ! पैसा !!

मानव वक्षस्थलपर नर्तन,
भावोका क्रन्दन, आकर्षण,
हृद् हृद्की ध्वनि, तेरा अर्चन,
धनिकोकी मृदु तृष्णा, पैसा।
दीनोका करुण रुदन, पैसा॥
यह रव कैसा?
पैसा, पैसा!!

तुझसे मानवताका विकास,
तुझसे मानवका सर्वनाश,
तू अन्धकार, तू है प्रकाश,
कागज, ककर, पत्थर, पैसा।
सहृदय अरु हृदयहीन, पैसा॥
यह रव कैसा?
पैसा, पैसा!!

धनिकोका उर तेरा निवास,
तृष्णाकी ज्वाला तव प्रकाश,
अय! दीनोके अन्तिमोच्छ्वास,
दीनोपर शासन यह कैसा?
निष्ठुरता, दानवता, पैसा॥
यह रव कैसा?
पैसा, पैसा!!

हिंसा जन-हनन है पैसा
तृष्णा असत्य माया पैसा
जो कुछ है सब यह है पैसा
जीवनकी उथल-पुथल पैसा।
संसार कुछ नहीं है पैसा॥
यह सब पैसा ?
पैसा पैसा !!

श्री नरेन्द्रकुमार जैन, 'नरेन्द्र'

आया द्वार तुम्हारे भगवन्, आया द्वार तुम्हारे

चैन नही चारो गतियोमे
भटक रहा वन-वन गलियोमें
जान नही पाया था तुमको
अव तो करो दया रे।१

कर्मोने वन-वन भटकाया
पग-पगपर दुख दे अटकाया
चैन नही है ऊपर नीचे
दुनिया केवल माया रे।२

दो दिनकी मेरी जिंदगानी
दुनिया दुखकी एक निशानी
जव आ जाये कालचक्र तव
उठ जाये सव डेरा रे।३

नभमें जगते जगमग तारे
कालचक्रसे सव ही हारे
जगविजयीको जीता तुमने
मुझको आज वचा रे।४

भवसागरमें मेरी नैया
कोई नही है आज खिवैया
तुमने अगणित जीव उवारे
मुझको पार लगा रे।५

मैं अपनेको भूल गया हूँ
पुद्गलको निज मान चला हूँ
कैसे भूल मिटे यह मेरी
किससे कहूँ वता रे।६

चरणोमे मैं आया तेरे
वार-वार मुझको दुख घेरे
अतल जलधिमें नैया झूले
अव पतवार लगा रे।७

श्री चौधरी देशदीपक जैन, 'दीपक'

झनकार

झनकार उठी झनकार उठी।

मजलूमोंका रक्त बहानेको।
दुनियाका वैभव पानेको।
अपना प्रभुत्व दिखलानेको।
दुनियामें लूट मचानेको।
जगतीके कोने-कोनेसे—
तलवार उठी तलवार उठी।
झनकार उठी झनकार उठी॥

मैं धनिक नहीं हूँ दाता हूँ।
धनिकोंके भाग्य विधाता हूँ।
इन गगनचुम्बी मीनारोंके—
बस मैं ही तो निर्माता हूँ।
उनके हृदयोंमें एक बार—
हुंकार उठी हुंकार उठी।
झनकार उठी झनकार उठी॥

तुम इन्हें न समझो दीन हीन।
यह हों चाहे वैभव-विहीन।
इनकी आहोंसे एक सृष्टि—
बन जाती है बिल्कुल नवीन।
इन भोले-भाले हृदयोंसे—
फुंकार उठी फुंकार उठी।
झनकार उठी झनकार उठी॥

श्री रवीन्द्रकुमार जैन

मजदूर

मैं एक अभागा उनमेंसे, जिनके पल्लेमें पुंजी नही।
श्रम करते हैं जो रात-रात, फिर भी सुख-शय्या सजी नही॥

आठो प्रहरोंमें चैन नही, सोते तकमें वे मौन नहीं,
स्वप्निल भाषामें कह उठते, कलको घरमें फिर नौन नही।
अब क्या कह दूं जीवनगाथा, स्वर वीणा भी तो बजी नही॥१॥ मैं एक

सिर पैर पसीना एक किये, फिर भी पाते हैं चैन नही,
कितनी आकुलता दुर्बलता, समताके मुखसे वैन नही।
जीवन स्वरमें सुखकर स्वरभर, गुणि गण गरिमा तक गुंजी नहीं॥२॥ मैं एक

मृतिका केवल जिनकी शय्या, मृतिका ही का सिरहाना है,
मृतिकामें जीवन पाया है, मृतिकामे ही मिल जाना है।
कैसे पलङ्ग क्या मसहरी, जिनके कानोने सुनी नहीं॥३॥ मैं एक

पंडित दयाचन्द्र जैन, शास्त्री

कहाँ है वह वसन्तका साज ?

(१)

स्वार्थसे व्याकुल था संसार
व्यथित दुखियोंकी करुण-पुकार।
हुआ था वीर वीर अवतार
मिला जगको वह प्राणाधार॥
कहाँ था वह ऋतुका ऋतुराज
कहाँ है वह वसन्तका साज ?

(२)

भरा था विश्वप्रेमका भाव
प्राणिरक्षाका था समभाव॥
"जियो जीने दो" यह प्रियमन्त्र
सुनाया था कर आत्मस्वतन्त्र॥
कहाँ वह रामराज्यका साज।
कहाँ है वह वसन्तका साज॥

(३)

वहाया स्याद्वादका गङ्ग

चलाया सत्य अहिंसा भङ्ग।

नहाया निखिल प्राणि सप्रेम

हुआ उज्ज्वल पथ-जगत्-असीम।

कहाँ वह वीर, वीर-युवराज

कहाँ है वह वसन्तका साज ?

(४)

धार्मिक-द्वेष बढे हैं आज

रूढिसरितामें मग्न समाज।

भारती माँका करुण-विलाप

बढाता सहृदय जन-सन्ताप।

पतनके अभिमुख सभ्यसमाज

कहाँ है वह वसन्तका साज ?

पं० कमलकुमार जैन शास्त्री, 'कुमुद', खुरई

साम्राज्यवाद

मानव-हस्तिपर गोलोंकी कितनी भारी बौछारोंसे
कितने अत्याचारों-तीरों-तलवारोंसे हा ! वारोंसे
भालोंके कितने मेघोंसे कितने तोपोंकी मारोंसे
कितनी ममता-विषमताओंसे हा ! सारे पापाचारोंसे

नरके कितने कंकालोंसे
साम्राज्य क्या निर्माण हुआ ?
ओ ! मानवके इतिहास बता
इससे कितना निर्माण हुआ ??

हा ! लोभ-स्वार्थ-निर्दयताके कितने झूठे अरमानोंसे
कितने छलसे बलसे विषसे कितने भयसे अभिमानोंसे
कितने दुष्टोंकी लिप्साके कितने वीरोंके बलिदानोंसे
कितने नरकोंकी ज्वालासे कितने पापोंकी खानोंसे

कितने मुर्दोंके खोपनसे
साम्राज्यवादका भाव हुआ ?
ओ ! मानवके इतिहास बता
इससे कितना निर्माण हुआ ??

श्री गोविन्ददास काठिया

वसन्त-आगमन

सरिता समुद्र प्रतिभा संयुक्त,
नलनी निकुज कलहस युक्त,
उपवनके मनहर कुजोमें,
कलरव-ध्वनिका है चमत्कार।

कमनीय वनी मधु-ऋतु समीर,
विरही विटपोको कर अवीर,
रमणीय रसाल वौरपर भी,
कोयलकी कुहु-कुहु है पुकार।

कलियाँ, कदम्व, कदली, कँमोद,
चम्पक, गुलाव, जुहि, किशु, कुन्द,
भर लाई विविध विरग रग,
श्रुतिरम्य मधुपगणकी झँकार।

पपिहाका 'पिउ-पिउ' नाद कही,
मुरलीका मधुर सुराग कही,
सुमनोंकी मधुर परागोंसे,
मधु-वनमें तेरी छवि अपार।

मनमोहन प्रेम वसन्त सभी,
भर लाते हृदय उमग नवी,
पर आज रक्तधारा लखकर,
कर रहे रसिकजन चीत्कार।

श्री युगलकिशोर 'युगल'

मानव

शान्त हृदय-सा बैठा मानव
हियमें माया-जाल छिपाये
बेसुध दीवाना मनमाना
मनमें रंगका साज सजाये।

स्वप्नोंकी झमझममें उसका
माया-सागर उमड़ा सारा
मायाभोगी भूल ही भूलमें
करते केलि सदा बेचारा।

तारक-मणकी लुप्त हुई जब
बिहँसी सुन्दर ऊषा-लाली
उसका भानु प्रभाकर विकसित
करते मानव-माया खाली।

जब सोचा मानवने मेरा
माया-फूल खिलेगा सारा
सहसा वज्राघात हुआ तब
कम्पित हो उसका हिय हारा।

क्योंकर जाने वह दैव-गति
मायाका मुरझाया मानव
देख रहा नश्वर जीवनको
मायाका ठुकराया मानव।

श्री अभयकुमार 'कुमार'

जागृति-गीत

हम जागें और जगायें !

उषा हुई, तारे हैं भागे, हम पीछे रह जायें,
ग्लानीमें सर धुन धुनकर क्यों, हम रोते रह जायें।

हम जागें और जगायें !

नीड-नीडमें प्रतिभा, मानव, तेरी बढती पायें,
जहाँ तिमिर आलोक वहाँ है, फिर भी रोते जायें।

हम जागें और जगायें !

प्राचीकी वह लाली सुन्दर, काली रेखा उसमें,
इंगित करती दीख रही है, आओ, हम बढ़ जायें।

हम जागें और जगायें !

हिन्दू, मुस्लिम, सिक्ख, इसाई, सबको अन्त मिलायें,
गिरजा, मस्जिद, गुरुद्वाराका बढके भेद मिटायें।

हम जागें और जगायें !

देश धर्मकी राह खोजकर, आगे बढ़ते जायें,
आजादीका सिंहनाद कर छाती ताने जायें।

हम जागें और जगायें !

श्री निहालचन्द्र, 'अभय'

ओ गानेवाले गाये जा

ओ गानेवाले गाये जा।
मातृभूमिकी बलिवेदीपर अपना रक्त चढ़ाये जा।

जल-प्लावन यह तूफान उठे
चाहे सहस्रों कहर गिरे
यही अँधेरी आँधी आये
पर तेरा यह ही राग छिड़े।

धमनीमें जोश उमड़ आये
हो नाड़ीकी भी गति धावे
यह जोशपूर्ण विद्युत-तरंग
कण-कणमें अग्नि जगा जावे।

तन-मनमें जोश उठे भारी
ओ ऐसा राग सुनाये जा
इस परिवर्तनकी चिनगारी
सुख सुलग चुकी सुलगाये जा।